CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

मार्च १९६३

★

रा णी ल क्ष्मी बा ई

★

५० नये पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्ष ४४ **वैदिक धर्म** अंक ३

क्रमांक १७० : मार्च १९६३

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

१ शत्रुसेनाका नाश (वैदिक प्रार्थना) ७३
२ यज्ञकी दक्षिणा श्री वीरसेन वेदश्रमी ७५
३ संस्कृत कथाओंकी विश्वव्यापकता
श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी ८१
४ योगेश्वर कृष्ण और नारी श्रीमती शक्ति शर्मा ८३
५ तरुणोंमें राष्ट्रसंरक्षक होनेकी क्षमता
श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर ८६
६ विश्वसमाज बनाओ श्री विश्वामित्र वर्मा ८८
७ तथागत पर मांसाहारका मिथ्या दोषारोपण
श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा ९८
८ वेदोंका रचना-काल श्री अरुणकुमार शर्मा १०४
९ वेदकी व्यापकता पर कुठाराघात
श्री नाथूलाल वानप्रस्थी १०८

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

भाग १–३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है।

भाग ५–६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है।

भाग ७–१० इनमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

भाग ११ इसमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं।

भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है।

भाग १३–१८ इनमें क्रियापद–विचारकी पाठविधि बताई है।

भाग १९–२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है।

प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ।।) और डा. व्य. ≈)

२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. १।)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो. ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

" वैदिक धर्म "

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.–' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

शत्रुसेनाका नाश

अमित्रसेनां मघवन्नस्मान् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥

अथर्व ३।१।३

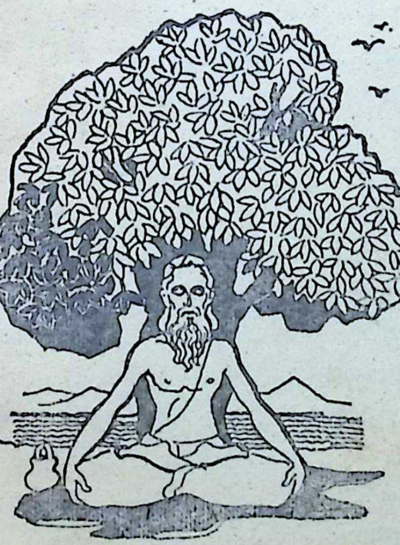

हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (अ-मित्र-सेनां) शत्रुकी सेना (अस्मान् अभि शत्रूयती) हमारे सामने शत्रुता करती है, हे (वृत्र-हन्) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र और (अग्निः च) और अग्नि ! तुम दोनों मिलकर (तान् प्रति दहतं) उन सैनिकोंको जलाकर भस्म कर दो ॥

युद्धमें शत्रुकी सेनाको मोहित करके जलाकर नष्ट करना उचित है। शत्रुको जीवित रखना नहीं है। यदि हो सके, तो तीक्ष्ण शस्त्रोंसे उनका वध करना चाहिए अथवा अग्निसे जलाकर उनको भस्म करना चाहिए। जो हो वह करके शत्रुसेनाको नष्ट करना ही योग्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आय धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	१)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	११)	१)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	११)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यज्ञकी दक्षिणा

(लेखक— श्री पं. वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी रोड, इन्दौर नगर)

दक्षिणाका महत्व

यज्ञ और दक्षिणाका परस्पर अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। जितना महत्व यज्ञका है उतना ही दक्षिणाका महत्व है। दक्षिणासे ही यज्ञ महत्वको प्राप्त होता है और यज्ञके बिना दक्षिणाकी भी कोई प्रतिष्ठान नहीं। यज्ञके अतिरिक्त कर्मके लिये दिये जानेवाले द्रव्यकी दक्षिणा संज्ञा भी नहीं होती। यज्ञ करानेके निमित्त दिये गये धनको जो बडी श्रद्धा एवं आदरसे दिया जाता है, वही दक्षिणा नामको सार्थक करता है। परमात्माकी प्रीति प्राप्त करने, आत्मोन्नति तथा समस्त विश्वके कल्याणके लिये यज्ञ होता है। उस यज्ञका प्रारंभ ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्ति एवं शान्तिके मन्त्रोंके उच्चारणके अनन्तर ऋत्विग्वरणपूर्वक अग्न्याधानादि कर्म करके अखिल ब्राह्मण्डके दैवत तत्वकी शुद्धि एवं पुष्टिकी जाती है, और उस यज्ञका अन्त दक्षिणाकी क्रियासे होता है।

दक्षिणासे यज्ञकी सफलता

आदि और अन्तके ऋत्विग्वरण एवं दक्षिणा प्रधान. इन्हीं दो कर्मोंके आश्रित यज्ञकी सफलता एवं यजमानको फल प्राप्ति होती है- अन्यथा नहीं। इसीलिये शास्त्रकारों ने दक्षिणा रहित यज्ञको नष्ट हुआ यज्ञ माना है। 'हन्ति वा एतद्यज्ञम्'— 'एष यज्ञोहतो न दक्षते' इत्यादि शतपथके वाक्य दक्षिणाकी महती आवश्यकताको प्रकट कर रहे हैं, इस नष्टताका तात्पर्य यजमानके फल प्राप्ति विशेषसे ही सम्बन्धित है, सर्व सामान्य फलके नाशसे नहीं। अतः सभी यज्ञोंमें दक्षिणादिकी नितान्त आवश्यकता है। परन्तु जो यज्ञ व्यक्तिगत लाभ प्राप्तिके लिये किये जाते हैं अथवा संस्कारादि यज्ञ कर्म हैं, उनमें तो दक्षिणा देना और भी अधिक आवश्यक है।

यज्ञपत्नी-दक्षिणा

यजुर्वेदके १८ वें अध्यायमें राष्ट्रभृत् होमके मन्त्रोंमें. यज्ञ और दक्षिणाके परस्पर गूढ, प्रेममय, फलप्रद एवं अभिन्न सम्बन्धको समझानेके लिये अलंकार रूपमें वर्णन किया है। परमात्माके अखिल विश्व या ब्रह्माण्ड रूपी राष्ट्रके भरणं एवं पोषण करनेमें यज्ञ और दक्षिणाका भी प्रमुख भाग होनेसे इसको राष्ट्रभृत् मन्त्रोंमें ग्रथित किया है। मन्त्रमें— 'भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम। स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु०' इस मन्त्रमें यज्ञको गन्धर्व एवं दक्षिणाको अप्सराका रूप दिया है। यज्ञ पुरुष रूप है तो दक्षिणा उसकी पत्नी रूप है। जिस प्रकार पतिपत्नीके दाम्पत्य रूप एकत्वसे सृष्टिका प्रवाह चलता रहता है और पोषण भी होता रहता है, उसी प्रकार यज्ञ एवं दक्षिणाके दाम्पत्य रूप एकत्व सम्बन्धसे वेदका सतत प्रवाह चलता रहता है और वेदका पोषण होता रहता है। यदि पुरुष कितना ही हृष्टपुष्ट एवं सुन्दर हो और वह पत्नी विहीन हो, तो वह सृष्टि प्रवाह चलानेमें या सन्तानोत्पत्तिमें निष्फल होता है। इसी प्रकार बहुत व्ययसे, उत्तम प्रकारसे रचाये तथा श्रद्धापूर्वक किये गये यज्ञकी सफलता तबतक नहीं हो पाती जबतक दक्षिणाका साहचर्य न हो।

प्रशंसनीय दक्षिणा देवे

यदि पुरुष हृष्टपुष्ट हो और पत्नी रोगी, दुर्बल एवं अप्रसन्न हो तो भी फल प्राप्ति संभव नहीं। यदि कदाचित् फलकी आशा भी हो जावे तो फल प्राप्तिका अवसर आनेपर वह नष्ट भ्रष्ट हो जाता है या दाम्पत्य जीवन ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार बहुत व्यय साध्य उत्तम यज्ञोंमें यदि दक्षिणाकी स्थिति क्षीण, दुर्बल, दरिद्र या खेद जनक हो तो उससे भी फल प्राप्ति संभव नहीं। इसीलिये वेदमें यज्ञकी अप्सराका नाम 'स्तावा' बताया है। अर्थात् यज्ञकी दक्षिणा 'स्तावा' स्तुति योग्य, प्रशंसा योग्य हो। प्रशंसा स्वयंके द्वारा की हुई निरर्थक है। ऋत्विजों और यज्ञमें आगत महानुभावों द्वारा जो प्रशंसनीय हो वही 'स्तावा' नामको सार्थक करनेवाली होगी। यही स्तावा रूपी-प्रशंसारूपी दक्षिणा यजमानके यशका विस्तार देश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देशान्तरमें तथा युगयुगान्तरमें भी करती हुई, सबके आशीर्वाद रूपी प्रशंसा रूप वचनोंसे यजमानके लिये चारों ओरसे सुख समृद्धिका कारण बनती रहती है।

यज्ञके अनुरूप दक्षिणा देवे

दक्षिणा प्राप्त ऋत्विजादि एवं उपस्थित विद्वान् यजमानकी कीर्तिका विस्तार उतने ही सामर्थ्यसे करते हैं, जितने सामर्थ्यसे यजमान दक्षिणाको 'स्तावा' प्रशंसा योग्य बनाता है। शतपथमें दक्षिणा देनेके बारेमें विवेचन करते हुए लिखा है — 'यावानेव यज्ञो यावत्यस्य मात्रा तावतीभिर्दक्षिणाभिर्दक्षयति- एकमात्रा दक्षिणानां दद्यात्' अर्थात् जितना बडा यज्ञ हो, जिस मात्रासे किया जावे, उतनी ही बडी मात्राकी दक्षिणासे वृद्धिको प्राप्त होता है- इस प्रमाणसे दक्षिणा देवे।

गौ दक्षिणा

प्रायः दक्षिणाके बारेमें गृह्य सूत्रोंमें संस्कारादिकी दक्षिणा कमसेकम गौ नियतकी है। शतपथमें भी– 'तस्यै धेनुर्दक्षिणा' धेनु दक्षिणामें देनेको बताई है। प्राचीन समयसे धेनु ही हमारी अर्थ व्यवस्थाका आधार रही है। यज्ञके साथ तो धेनुका और भी सम्बन्ध है। यजमानके लिये यजुर्वेदके प्रथम मन्त्रमें– 'अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीः' इस गोपति यजमानके पास बहुतसी गौएँ हों- यह प्रार्थना की है। जिस प्रकार यज्ञके द्वारा सर्व कामनाओंका दोहन होता है, उसी प्रकार हमारे जीवनकी धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी साधनाओंकी आश्रयभूत पूरक कामनाओंका दोहन-प्राप्ति धेनु-गौके द्वारा होती है। अतः दक्षिणाकी प्रधान इकाई गौको ही नियत किया गया। और इसीकी अपेक्षासे दक्षिणाकी मात्रा बढाई गई। शतपथमें– 'ता वै षड् दद्यात्-द्वादश दद्यात्-चतुर्विंशति दद्यात्' कहकर ६,१२, एवं २४ संख्या दक्षिणामें देनेका विधान किया है। इतनी दक्षिणा देनेका महत्व प्राचीन ऋषियोंने समझा था। इसका प्रधान कारण यह भी था कि दक्षिणाकी समुचित मात्राके विना यज्ञका जो पश्चात्परिणाम, आधिदैविक और आध्यात्मिक क्षेत्रसे प्राप्त होता है, वह यजमानको प्राप्त नहीं होता और हानि भी हो सकती है।

दक्षिणासे मनुष्य देवोंकी तृप्ति

जो लोग यह समझते हैं कि अग्निमें आहुतिकी सम्पूर्णतासे ही यज्ञ पूर्ण हो जाता है और दक्षिणाकी आवश्यकता नहीं, वे– 'घ्नन्ति वा एतद्यज्ञम्' (शतपथ) के अनुसार यज्ञको निःसन्देह नष्ट ही करते हैं, क्योंकि– 'आहुतिभिरेव देवान्प्रीणाति दक्षिणाभिर्मनुष्यदेवान्' यह सिद्धान्त महर्षि याज्ञवल्क्यने यज्ञके लिये स्थिर किया है। अर्थात् आहुतिसे तो देवता प्रसन्न होते हैं और दक्षिणासे वेदज्ञ विद्वान् देव तृप्त होते हैं। इस प्रकार जब दोनों प्रकारके देव प्रसन्न होते हैं तो यजमानको सुनिश्चित, निर्धारित फलकी प्राप्ति होती है।

क्या दक्षिणा लेना बुरा है

आजकल जन समाजमें दक्षिणा देनेकी प्रणालीकी बहुत उपेक्षा है। कुछ लोग तो ऐसे भी हैं, जो यह भी बडे बुरे भावमें कहते है कि अमुक तो दक्षिणा लेते हैं। मानो यज्ञकी दक्षिणा लेना बडा भारी दोष है। परन्तु संस्कारविधिमें महर्षि स्वामी दयानन्दजीने 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' इस मनु वाक्यका अर्थ करते हुए व्यक्तिगत कार्यके लिये दान लेनेको निन्दित लिखा है और यज्ञादि कराकर दक्षिणा लेनेको श्रेष्ठ लिखा है तथा संस्कारोंके अन्तमें भी दक्षिणा देनेका विधान किया है। जब यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है और दक्षिणा उसीका प्रमुख अंग है तो वह भी श्रेष्ठ ही है। यदि दक्षिणा लेना दोष होता तो उसको विद्वान् देवोंको देनेका विधान शास्त्र भी क्यों करते? यदि विधान करते तो मूर्खोंको देनेका विधान कर देते या अपंगोंको, अपाहिजोंको ही देनेके लिये लिखते। अतः दक्षिणा लेना श्रेष्ठ ही है।

दक्षिणा छिपाकर न दें

वेदमें दक्षिणाको यज्ञकी पत्नीका रूप दिया है और उसका नाम 'स्तावा' प्रशंसा योग्य लिखा। यदि वह अप्राप्त होती तो उसका नाम 'स्तावा' नहीं होता अपितु 'निन्द्या' ही होता। अतः दक्षिणा लेना और देना श्रेष्ठ कर्म है। बहुतसे यजमान आजकल दक्षिणाको लिफाफेमें बन्द करके देते हैं जिससे किसीको मालूम न पडे कि क्या दिया है, जबतक यज्ञकी दक्षिणा प्रकट रूपमें, यज्ञ शालामें अच्छी प्रकार सत्कारसे, सबके सामने नहीं दी जावेगी तो उसकी प्रशंसा भी नहीं होगी 'स्तावा' नाम सार्थक नहीं होगा। अतः गुप्त रूपसे दक्षिणा नहीं देनी चाहिये। दक्षिणा छिपानेकी वस्तु नहीं है। दानको छिपाकर गुप्त रूपसे विना अपना स्वामित्व एवं अभिमान प्रकट किये देना तो अच्छा है। परन्तु आजकल दक्षिणा तो गुप्त रूपमें देकर अपनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृपणताको छिपा लेते हैं और दानकी राशिकी खूब पब्लिसिटी करते हैं। वह दान दान नहीं जिसके द्वारा अपनी पब्लिसिटी कराई जाती है। वह तो अपनी पब्लिसिटीपर व्यय किया गया धन हुआ। दान वास्तवमें नहीं हुआ।

क्या दक्षिणा अग्राह्य है?

यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है तो यज्ञांग दक्षिणाभी श्रेष्ठ कर्म है। कुछ लोग कहते हैं कि यज्ञमें दक्षिणा न लेना भी त्याग है। ऐसे त्यागका ढोंग रचनेवाले शास्त्राज्ञाका उल्लंघन तो करते ही हैं और चतुर्विध परम पुरुषार्थमेंसे एक अंग-अर्थका ही लोप करके अधर्मका प्रचार करते हैं। ऐसा त्यागवाद वेद प्रचारके लिये और वेदकी रक्षाके लिये हानिकारक ही है।

क्या दक्षिणामें द्रव्य न हो?

कुछ लोग कहते हैं कि यज्ञमें दक्षिणा लेनी चाहिये, परन्तु वह दक्षिणा भौतिक या द्रव्यमयी नहीं होनी चाहिये। यजमानके दुर्गुणोंको ऋत्विज् ब्रह्मादि उनसे मांगकर उनका त्याग कराकर बुराईको ले लेना और यजमानमें व्रतादि की स्थापना करा देना ही साधुसन्तोंके लिये महान् दक्षिणा रूप उपकार कर्म है। इसमें जहां तक बुराईयोंके त्याग एवं व्रतानुष्ठान रूप आचरणकी ओर यजमानकी प्रवृत्ति कराना है वह तो ठीक है परन्तु उसे दक्षिणाका रूप दे देना ऋषि-महर्षियोंके तथा वेदके सिद्धान्तके प्रतिकूल है।

दक्षिणासे वेद रक्षा

धर्म और अर्थका साहचर्य रहना चाहिये। धर्मसे अर्थोपार्जन करना श्रेष्ठ है तो धर्मकार्योंसे भी अर्थोपार्जन श्रेष्ठ कार्य है। यदि धर्म एवं धर्मकार्योंसे अर्थोपार्जनको हेय या उपेक्षित कर दिया जावे तो फिर अधर्मसे अर्थोपार्जनकी प्रवृत्ति बढती है। उस अवस्थामें अधर्मसे अज्ञान एवं असत् कर्मोंका प्रवाह चलने लगता है। हमारे ऋत्विज् पुरोहित, आचार्योंको यदि हम यज्ञमें अच्छी दक्षिणा नहीं देंगे तो यज्ञयागादि कर्मोंका लोप भी हो जावेगा और उन पुरोहितोंको अर्थोपार्जनके लिये किसी न किसी वृत्तिको अपनाना पडेगा। यदि यज्ञादि बहुत मात्रामें होंगे और उनमें हमारे पुरोहितोंको अच्छी दक्षिणा मिलती रहेगी तो वे वेदके ही स्वाध्यायमें दिनरात लगे रहेंगे और उनकी सन्तान भी वेदके अध्ययन-अध्यापनमें लगी रहेगी अन्यथा वेदकी परम्परा लुप्त हो जावेगी। अतः दक्षिणा देनेमें अर्थकी उपेक्षा किसी प्रकार भी नहीं करनी चाहिये। वेदकी रक्षा एवं प्रचारके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

महर्षिदयानन्दजीका आदेश

दक्षिणाके बारेमें महर्षि स्वामीदयानन्दजी सरस्वतीने संस्कारविधिमें प्राचीन शास्त्रोंके आधारपर बहुत कुछ लिखा है। उनके दिये हुए उद्धरण ध्यान देने योग्य है। यज्ञपात्रोंके लक्षण प्रकरणमें उन्होंने लिखा है कि— 'ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलांगुलीयकवासांसि'— अर्थात् यज्ञके प्रारम्भमें जब ऋत्विजोंका वरण किया जावे तो उनको वरण के साथ सुवर्णका कुंडल, अंगूठी और उत्तम वस्त्र देकर वरण करे। इसके पश्चात् अग्न्याधानकी दक्षिणाके बारेमें लिखा है कि— 'अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपंचाशद्गावः, द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः, षट्पक्षे त्रयोदशः, सर्वेपुपक्षे आदित्ये अष्टौ धेनवः। वरार्थंचतस्रो गावः।' अर्थात् अग्न्याधानके लिये ४९ या २५ या १३ या ८ धेनु दक्षिणा में देनी चाहिये। यहां पर आठ धेनु (गौ) न्यूनसेन्यून अग्न्याधानकी दक्षिणा देनी चाहिये, ऐसा मतव्यक्त किया है। जहां गौके प्रमाणसे दक्षिणा देना या विधान है वहां वरके प्रमाणसे भी दक्षिणा देनेका विधान है। अमुक कर्मकी दक्षिणा वर या दो वर आदि देवे, ऐसा विधान शास्त्रोंमें लिखा है वहां वरसे तात्पर्य ४ गौवोंका ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् किन्हीं कर्मोंमें न्यूनसेन्यून एक वर भी दक्षिणा मानने पर ४ गौ न्यून से न्यून दक्षिणा भी होती है। गौ शब्दसे तात्पर्य प्रथम प्रसूता सवत्सा गौसे होता है।

दक्षिणासे वेदमें प्रवृत्ति

यदि ऋत्विग्वरणके बाद अग्न्याधान या यज्ञके सम्पूर्ण कर्मके अन्तकी दक्षिणा इसे मान ले और इतनी या इससे आधी या चौथाई भी दक्षिणा समाजके विद्वानोंको प्राप्त होने लगे तो उनको वेदके अतिरिक्त अन्य किसी व्यवसायमें लगना ही न पडेगा और प्रत्येक अपना वेदानुसन्धान कार्य स्वतन्त्ररूपसे प्रसन्नतासे चला सकेगा। धेनुका प्रतिनिधिरूप द्रव्य भी माना जाता है। अतः कमसे कम ८ सद्यः प्रसूता गौओंका जो मूल्य होता हो उतना ऋत्विजोंको दक्षिणामें देना भी प्राचीन ऋषि मुनियोंको अभीष्ट था।

दक्षिणा कैसे दें?

दक्षिणादि देनेकी क्रिया किसप्रकारसे करनी चाहिये, इस पर भी ध्यान देना आवश्यक है। निरादर भावसे,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपेक्षित रूपसे या अभिमानसे या ऋत्विजों पर हम बडी कृपा कर रहे हैं इत्यादि प्रकारसे दक्षिणा नहीं देनी चाहिये, अपितु ऋत्विजोंने हमारे प्रति बडी कृपाकी है और इनकी कृपासे परमात्माकी कृपा एवं प्रसाद प्राप्त होगा तथा यज्ञकी सफलता होगी, ऐसे पूजनीय एवं श्रद्धायुक्त भावसे बडे विनम्र होकर दक्षिणा देनी चाहिये। महर्षि स्वामी दयानन्दजीने इसके लिये 'उत्तम प्रकारसे यथासामर्थ्य' देनेके लिये लिखा है। उत्तम प्रकार वही है जिसका ऊपर उल्लेख किया है और यथा सामर्थ्यका तात्पर्य न्यूनसे न्यून दक्षिणासे लेकर जो अधिकसे अधिक देनेकी सामर्थ्य हो वह दक्षिणामें देना योग्य है। महर्षिस्वामी दयानंदजी सरस्वती देनेकी वस्तुओंमें–आसन, अन्न (फलादि) जल (विविध-पेय), वस्त्र पात्र एवं धनादिका उल्लेख करते हैं। अतः यथासामर्थ्य शब्दसे इन्हींका न्यूनाधिक परिमाण ग्रहण किया जाना चाहिये।

दक्षिणाके बाद क्या हो

दक्षिणा देनेके पश्चात् ऋत्विजोंको प्रथम भोजन कराना चाहिये। आजकल ऋत्विजोंके भोजनादिके लिये तो कोई पूछता नहीं है, स्वयंके भोजन एवं अपने इष्ट मित्रोंके चाय, नाश्ता या भोजनादिकी व्यवस्था करते हैं। ऋत्विज भूखे रहें, इसकी चिन्ता नहीं रहती है। परन्तु महर्षि स्वामी दयानंदजी लिखते हैं कि– हुतशेष घृतभात मोहनभोग (यज्ञशेष) को यजमान एवं यजमान पत्नीको ग्रहण करना चाहिये परन्तु उससे भी पूर्व ऋत्विजोंको यज्ञकी दक्षिणा देकर पुनः भोजन करावे और भोजनोपरान्त भी पुनः दक्षिणा देके उन्हें सत्कारपूर्वक विदा करे। पश्चात् यजमान एवं यजमान पत्नी यज्ञ शेषको पहले खाकर फिर भोजन करें। इस प्रसंगमें महर्षिने भोजनके बाद भी दक्षिणा देनेको लिखा है जैसा कि आर्य समाजियोंसे अन्य जनोंमें भोजनके बाद दक्षिणाकी प्रथा है। आर्य समाजियोंको भी यह व्यवहार प्रचलित करना चाहिये। यह भी वैदिक विधि ही है।

न्यून दक्षिणासे शूद्रत्वकी वृद्धि

यज्ञके प्रारम्भमें वरणमें कुंडल, अंगूठी, उत्तम वस्त्रादि और यज्ञके अन्तमें उत्तम दक्षिणा, पुनः भोजनोपरान्त दक्षिणा देनेके लिये विधान किया है। कुछ लोग कहेंगे कि यह तो बहुत हो जाता है। तो क्या आप चाहते हैं कि वैदिक विद्वानोंको बहुत न दिया जावे और उनका शोषण ही होता रहे। वैदिक विद्वानोंके शोषणसे वेदकी हानि हो रही है और हमारा समाज वेदप्रेमी होते हुए भी वेद विहीन होता जा रहा है। भजन कीर्तनके व्यर्थके जोशीले व्याख्यानोंके प्रवाहमें बहे जा रहे हैं। इस प्रकार वेद और वैदिक विद्वानोंकी उपेक्षासे शूद्रत्वकी वृद्धि हो रही है और आस्तिक कहे जानेवाले समाजमें नास्तिकताका साम्राज्य फल फूल रहा है। यह सामाजिक तथा जातिगत अपराध है अतः इसका फल आर्य समाजको बुरी तरहसे भोगना पडेगा और भोगना पड रहा है। परिणामतः आज हमें कहीं भी उन्नति तो दृष्टिगोचर नहीं हो रही है अपितु सर्वत्र अवनति कलह और विनाश ही दृष्टिगोचर हो रहा है। यह सब अपने उद्देश्यसे विमुख होनेका ही परिणाम है।

दक्षिणा कब देवे

यज्ञकी दक्षिणा यज्ञके तुरन्त बाद ही देनी चाहिये, विलम्बसे नहीं। विलम्बसे देनेसे यज्ञ और दक्षिणाका स्वरूप बिगडता है। महर्षि स्वामी दयानंदजीने पूर्णाहुतिके उपरान्त ही इस क्रियाका विधान किया है, अतः दक्षिणाकी क्रिया पूर्णाहुतिके पश्चात् तुरन्त ही करनी चाहिये। तुरन्त दक्षिणा देनेके लाभ और विलम्बसे दक्षिणा देनेमें दोषको प्रकारान्तरसे ग्रन्थोंमें निम्न प्रकार प्रकट किया गया है।

यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च।
कर्मिणां फलदाता चेत्स्वेवं वेदविदो विदुः॥
कृत्वा कर्म च तस्यैव तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्।
तत्कर्मफलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने॥
कर्त्ता कर्माणि पूर्णे च तत्क्षणं यदि दक्षिणाम्।
न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा॥
मुहूर्त्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम्।
एकरात्रे व्यतीते तु भवेत् शतगुणा च सा॥
त्रिरात्रे तद्दशगुणा, सप्ताहे द्विगुणा ततः।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते॥
संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटि गुणा भवेत्॥

अर्थात् यज्ञ दक्षिणाके साथ पुत्र और फलके द्वारा यज-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानको फल दाता होता है, ऐसा वेदको जाननेवालोंका अभिमत है । यज्ञकी समाप्तिपर तुरन्त ही दक्षिणा प्रदान करनेसे यज्ञका फल प्राप्त होता है, ऐसा वेदोंमें प्रतिपादित किया है । यदि यजमान ऋत्विजोंको यज्ञके पश्चात् उसी क्षण दक्षिणा अज्ञानसे या अन्य कारणोंसे नहीं देता है तो एक मुहूर्त बीत जानेपर उस दक्षिणाकी मात्रा दुगुणी देनी चाहिये । यदि एक रात्रिका विलम्ब दक्षिणाके देनेमें हो जावे तो सौ गुणा अधिक देना चाहिये । तीन रात्रिका विलम्ब हो जानेपर सौ गुणेका दश गुणा अर्थात् सहस्र गुणा अधिक दक्षिणा देनी चाहिये । एक सप्ताहका विलम्ब दक्षिणा देनेमें हो जानेपर उसका दो गुणा अर्थात् दो हजार गुणा दक्षिणा देनी चाहिये । यदि १ मासका विलम्ब हो जावे तो एक लाख गुणा, और एक वर्षका विलम्ब दक्षिणा देनेमें हो जावे तो ३ करोड गुणा दक्षिणा देनी चाहिये । यह सब विवरण दक्षिणाको तुरन्त देनेके महत्वको प्रकट करता है । १ वर्षके व्यतीत होनेपर भी दक्षिणाके न देनेपर यज्ञका फल नष्ट हो जाता है ऐसा विधान किया है ।

दक्षिणाका अर्थ

दक्षिणा शब्द 'दक्ष' धातुसे बनता है, जिसका अर्थ 'वृद्धि और शीघ्रता' है । अतः दक्षिणासे यजमानके यज्ञके फलकी वृद्धि होती है और शीघ्रतासे भी होती है, यह ज्ञात होता है । इसीलिये प्राचीन कालसे आजतक यही मान्यता चली आ रही है कि यज्ञमें दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये और तुरन्त देनी चाहिये, अन्यथा फलकी प्राप्ति नहीं होती है । वेदने दक्षिणाको यज्ञ पत्नी कहकर उसका महत्व प्रकट किया है और उस दक्षिणाका नाम 'स्तावा' परमात्माकी ओरसे निर्धारित किया होनेसे तो और भी विशेष महत्व हो जाता है । वेदके इसी अर्थको प्रकट करनेके लिये प्राचीन भाष्यकारोंने 'दक्षिणा वै स्तावा दक्षिणाभिर्हि यज्ञः स्तूयते' कहा है । अर्थात् यज्ञकी दक्षिणाका नाम 'स्तावा' है क्योंकि दक्षिणासे ही यज्ञकी प्रशंसा होती है । अतः दक्षिणाका महत्व समझना चाहिये ।

वेदमें दक्षिणाका महत्व

ऋग्वेदमें दक्षिणाकी प्रशंसामें कुछ मन्त्र हैं । उनमें बताया है कि– 'दक्षिणा देनेवाले यजमान दक्षिणाके प्रभावसे सातमाताओंका दोहन प्राप्त करते हैं । दक्षिणाके प्रभावसे यजमानको महान् श्रेष्ठ मार्ग प्राप्त होता है । दक्षिणा देनेवाले आयुको अनेक सुखोंको और मोक्षको प्राप्त करते हैं ।' इत्यादि ।

दक्षिणाका महत्व वेदमें है तथा प्राचीन ऋषियोंने भी इसका प्रतिपादन किया है । महर्षि स्वामी दयानन्दजीने भी किया है, अतः इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और यथा शक्ति, श्रद्धापूर्वक, बडे सत्कारसे देना चाहिये । ऋत्विजोंको दी हुई दक्षिणा वेदको ही जा रही है– या वेदका ही यह सम्मान करना है तथा वेदको अर्पण किया गया धन परमात्माको ही भेंट होरहा है एवं उससे परमात्माकी प्रीति एवं प्रसन्नता प्राप्त होगी, ऐसा समझकर दक्षिणा देनी चाहिये ।

अनेक दक्षिणायें

ऋत्विग्वरण एवं यज्ञान्तकी प्रमुख दक्षिणाके अतिरिक्त ब्रह्मपीठ दक्षिणा भी दी जाती है । यज्ञान्तकी दक्षिणासे पूर्व सर्व प्रथम इसे ही ब्रह्माके सामनेकी चौकी पर रखे वेदको अर्पित की जाती है । यह वेदका पृथक् भाग रखना पडता है और वह ब्रह्माका भाग होता है । इससे वेदादि ग्रन्थोंके संरक्षण एवं क्रयादिमें सहायता होती है । यह प्रथा उत्तम भी है । इसे भी प्रचलित करना चाहिये । ब्रह्मपीठ दक्षिणा के पश्चात् ब्रह्माको दक्षिणा देनी चाहिये, पुनः अन्य ऋत्विजोंको देना चाहिये । ब्रह्माकी दक्षिणासे आधी दक्षिणा अन्य ऋत्विजोंको देनी चाहिये । दक्षिणामें आसन, पात्र, फल, सेवा, अन्न, उत्तम वस्त्र एवं द्रव्य देना चाहिये । ऋत्विजोंको वस्त्रादि देते समय उनकी पत्नियोंके लिये भी यथा संभव उत्तम वस्त्राभूषण भी देने चाहिये ।

भूयसी दक्षिणा एवं भोजनकी दक्षिणा

इसके अतिरिक्त भूयसी दक्षिणा भी दी जाती है । मुख्य दक्षिणादिके अतिरिक्त जो दक्षिणा बादको दी जाती है और यज्ञमें उपस्थित सर्व सामान्य विद्वान ब्राह्मणोंको भी सत्कारार्थ जो द्रव्यादि दिया जाता है उसे भूयसी दक्षिणा कहते हैं । यह क्रिया भी वैदिकोंके संरक्षणके लिये उत्तम है । इसके पश्चात् ऋत्विजोंको सत्कार पूर्वक सबसे पृथक् रूपमें भोजन यजमान एवं यजमान पत्नी करावें और भोजनो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

परान्त भी दक्षिणा देवें। इतनी दक्षिणाकी क्रिया करनी चाहिये।

यज्ञपात्र ऋत्विजोंको दे देवे

ऋत्विजोंको पात्र देनेके सम्बन्धमें भी ध्यान देना आवश्यक है। अन्वाहार्य पात्र ऋत्विजोंको देना चाहिये। अन्वाहार्य पात्रोंका संस्कारविधिमें लक्षण निम्नप्रकार लिखा है- 'पुरुष चतुष्टयाहार पाक परिमाणार्थम्'। अर्थात् ऐसे पात्र जिनमें ४ व्यक्तियोंका भोजन बन सके। इसके अतिरिक्त यज्ञके लिये जो पात्र आवे हैं वे भी यज्ञसमाप्ति पर ऋत्विजोंको ही दे देने चाहिये। परन्तु आजकल इस बातको न समझकर यजमान उन्हें अपने पास ही रख लेते हैं। यज्ञका तात्पर्य है देवपूजा, संगतिकरण और दान, अतः यज्ञके लिये आये पात्रादि भी इसी निमित्त हुए। जो यज्ञके लिये पात्र लाये जाते हैं उनसे देव पूजा अर्थात् होम किया जाता है और उनका होम कार्योंमें संगतीकरण-उपयोग किया जाता है। दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर उन पात्रोंका ऋत्विजोंको प्रदान कर देनेसे यज्ञका पूर्ण अर्थ पात्रोंसे भी घटित होजाता है। अतः यज्ञ निमित्त आये पात्रादि यजमान अपनी सम्पत्ति न समझ कर उनको ऋत्विजोंको ही दे देना चाहिये। अन्य दानकी वस्तुका वह स्वयं उपभोक्ता और अधिकारी बननेका दोषी होजाता है और यज्ञके अर्थको नष्ट करता है।

दक्षिणा देनेका क्रम

दक्षिणादि द्वारा सम्मान करते समय सर्वाधिक सम्मान ब्रह्माका तदुपरान्त अन्य ऋत्विजोंका, तदुपरान्त यज्ञके अन्य सहयोगी व्यक्तियों, उपदेशकों, प्रचारकों एवं अन्य महानुभावोंका करना चाहिये। सब धान २२ पसेरी न्यायके अनुसार व्यवहार नहीं करना चाहिये। आशा है आर्यजन दक्षिणादिके व्यवहारके बारेमें इसपर ध्यान देकर सुधार करेंगे।

सूचीपत्र मंगवाइये]

वेदकी पुस्तकें

[ग्राहक बनिये

	मूल्य रु.		मूल्य रु.
ऋग्वेद संहिता	१०)	यजुर्वेद वा. सं. पादसूची	१॥)
यजुर्वेद (वाजसनेयि संहिता)	४)	ऋग्वेद मंत्रसूची	१)
सामवेद	३)	अग्नि देवता मन्त्र संग्रह	६)
अथर्ववेद	६)	इन्द्र देवता मन्त्र संग्रह	७)
(यजुर्वेद) काण्व संहिता	५)	सोम देवता मन्त्र संग्रह	३)
(यजुर्वेद) मैत्रायणी संहिता	१०)	मरुद्देवता मन्त्र संग्रह	१)
(यजुर्वेद) काठक संहिता	१०)	दैवत संहिता (तृतीय भाग)	६)
(यजुर्वेद) तैत्तिरीय संहिता, कृष्ण यजुर्वेद	१०)	सामवेद कौथुम शाखीयः ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः	६)
यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र	१॥)		

मूल्य के साथ डा. व्य., रजिस्ट्रेशन एवं पेकींग खर्च संमिलित नहीं है।

मंत्री— स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत कथाओंकी विश्वव्यापकता

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी)

प्रत्येक राष्ट्रकी सांस्कृतिक धरोहर उस देशकी लोक कथायें हैं । भारतकी लोक कथायें भी अत्यन्त प्राचीन हैं । इसके साथ ही साथ वे उत्कृष्ट भी हैं, वे विश्वकी सभी साहित्य निधियोंका भण्डार भरती रहती हैं । ये जहां रोचक हैं, वहींपर शिक्षाप्रद भी हैं । हमारे यहांकी कथाओंमें मनु, शुक्र और चाणक्य, विदुर आदि प्रसिद्ध नीति शास्त्रज्ञोंके नीति वाक्योंको कथाओंके माध्यमसे बडे ही सुन्दर और सरल ढंगसे प्रस्तुत किया गया है । उदाहरणार्थ विष्णुशर्मा रचित पंचतंत्रकी कथायें निरुद्देश्य या केवल मनोरंजनकी दृष्टि मात्रसे लिखी गई कहानिया नहीं हैं, उसकी कथाओंमें भारतीय नीति शास्त्रका निचोड भरा है ।

प्रत्येक कथा नीतिके किसी न किसी विषयविशेषको प्रतिपादित करती है । प्रत्येक कथाके लेखनके पीछे एक प्रेरक उद्देश्य निश्चित है । नीतिके वे सिद्धान्त जो पण्डित भी वर्षोंके माध्यमसे अध्ययनरत रहकर नहीं सीख पाते थे, जन साधारण इन नीति सिद्धान्तोंको घण्टोंके व्याख्यानोंसे नहीं समझ पाती, वह इन छोटी छोटी कथाओंके माध्यमसे अनायास ही वे सिद्धान्त उनके हृदयपटलपर अङ्कित किये जा सकते हैं, इस प्रकार इन लघु कथाओंका प्रभाव भी चिरस्थायी रूपसे पडता है । ये ही वे कारण हैं जिनसे कि संस्कृतकी इन कथाओंने विश्व व्यापी लोकप्रियता अर्जित की है, यही कारण है कि प्रत्येक भाषाके साहित्यने उसे अपनाकर अपना साहित्य समृद्ध किया है ।

इस प्रकार ये कथायें विश्व भरमें लोक प्रियता प्राप्त कर चुकी हैं । सर्व प्रथम इनका अनुवाद करीब ६ ठीं शताब्दीमें हुआ था, और तबसे अबतक ये कथायें यूरोपकी करीब दर भाषाओंमें स्थान प्राप्त कर चुकी हैं । तभी तो सर विलियम जोन्सने पंचतंत्रके विषयमें आज करीब १५० वर्ष पूर्व लिखा था—

'हिन्दुओंका नीतिशास्त्र अभीतक सुरक्षित है और विष्णु शर्माकी कहानियां संसारकी सबसे पुरानी नहीं तो सर्व श्रेष्ठ कहानियां अवश्य हैं ।'

सचमुच पंचतंत्र विश्व साहित्यकी एक अमूल्य निधि है इस बातका अनुमान इसीसे सहज ही लग सकता है कि अबतक ५० से भी अधिक विविध भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है । जिनमें ३५ अभारतीय भाषायें हैं, जिनमें बहुतोंके तो करीब २००, १०० संस्करण हो चुके हैं । इसकी इसी बढती हुई लोकप्रियतासे प्रभावित होकर के प्रोफेसर मूरलेने पंचतंत्र वा हितोपदेशकी प्रस्तावनामें लिखा था कि—

'पंचतंत्रके नीति वाक्योंमें सांसारिक ज्ञानका जो कोष है, वह समय और स्थानकी दूरी होनेपर भी सदैव उपयोगी है । पंचतंत्रकी प्रत्येक कहानी आज भी मानव चरित्रका सच्चा चित्रण करती है और उसमें लिखे गये दो तीन हजार वर्ष पूर्वके नीति वाक्य आज भी मानवमात्रका पथ प्रदर्शन कर सकते हैं, आज भी उनका प्रवचन घरोंमें वा गिरजा घरोंमें हो सकता है ।'

उपरोक्त कथनमें यह बात स्वीकार की गई है कि ये कथायें मनोरंजनके लिये नहीं वरन् मानव मात्रके पथ प्रदर्शनके लिये ही अपनाई और प्रचारित की गई थी । तभी तो सुप्रसिद्ध पौरस्त्य विद्या विशारद पाश्चात्य मनीषी विंटरनिट्जने लिखा है—

'विश्वमें बाईबिलके अतिरिक्त पंचतंत्रके समान किसी दूसरी पुस्तकका इतना प्रसार नहीं हुआ ।'

इसके साथ ही साथ इस कथा संग्रहकी लोकप्रियता केवल अनुवाद मात्रतक ही सीमित रही हो यह भी नहीं है । अपितु प्रत्येक भाषा भाषीने देश, काल, परिस्थितिके औचित्यपर नजर रखते हुए इन कथाओंमें आवश्यक परिवर्तनोंको स्थान दिया है । इस बातका प्रमाण यह है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५७० ईस्वीशतीमें सीरियन भाषामें पंचतंत्रका अनुवाद एक बूद नामी ईसाई द्वारा हुआ था। उस अनूदित पुस्तकका नाम 'कलिलग और दमनग' था। पंचतंत्रमें मित्र भेदमें करटक और दमनक नामक गीदड़ोंकी बातोंके तारतम्यमें ये कथायें कही गई थी। अतः इस अनुवादमें पुस्तकका नाम करण उन्हींके आधारपर हुआ। अन्तर सिर्फ इतना ही आया कि सीरियन भाषामें करटक और दमनकका नाम रूप कलिलग और दमनग १ हो गया, जो देश, काल, परिस्थितिके अनुसार किया गया परिवर्तन कहा जा सकता है।

इसी प्रकार ७५० ई. के करीब पंचतंत्रका अरबी अनुवाद खलीफा अबूफजफ्फरकी प्रेरणासे अब्दुल्ला इब्नअल मोरुफा नामक व्यक्तिने किया था। इस अनुवादका नाम 'कलीलह' और 'दमनह' रक्खा गया था।

इसी प्रकार मूल कथाओंके पात्रोंमें भी अनुवाद करते समय परिवर्तन कर दिया गया, परन्तु कथाके मूल प्लाटोंमें किसी भी प्रकारका विशेष परिवर्तन नहीं आया। श्री जयदेवजी विद्यालंकार द्वारा प्रस्तुत इस प्रमाणसे यह बात स्पष्ट है; वे लिखते हैं—

'इसके निदर्शनमें एक भारतीय कथाको प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके चरित नायकको एक ईसाई सन्तका रूप दे दिया गया है। जातकोंमें उपलब्ध महात्मा बुद्धकी जीवन कथाको 'जॉन ऑफ दमस्कस' ने ईसाई सन्त महात्मा जोसफटके जीवन चरित्रके रूपमें बदल दिया है। 'बर्लाम और जोसफटके' शीर्षकसे यह कथा ग्रीक भाषामें लिखी गई थी।'

जोसफट चरित्र और 'ललित विस्तर' में वर्णित गौतम बुद्ध चरित्रमें पर्याप्त समानता है। कई विद्वज्जनोंने यह स्वीकार भी किया है कि जोसफट चरित्र बुद्धके चरित्रका ही प्रतिरूप है। 'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर' के पृष्ठ ५०२ पर प्रो. कीथने यह स्वीकार किया है कि—

' 'जोसफट' नाम बुद्धके प्रसिद्ध नाम बोधिसत्वका ही परिवर्तित नाम है।'

पंचतंत्र लोक व्यवहार और नीतिका अनुपम ग्रंथ है, इसे वर्षोंसे स्वीकार किया जा रहा है। पंचतंत्रका प्राचीनतम अनुवाद ईरानकी प्राचीन भाषा पहलवीमें प्राप्त होता है। यह अनुवाद ईसाकी ६ ठी शताब्दीमें किया गया था इस अनुवादके संबंधमें एक मनोरंजक एवं प्रेरक कथा प्रचलित है। ईरानके इतिहास-प्रसिद्ध न्याय प्रिय बादशाह नौशेरवांने यह सुन रक्खा था कि भारत वर्षमें एक ऐसी बूटी उपलब्ध है जिसका सेवन करनेसे मनुष्य अमर हो जाता है। उसने भी अमर बनने हेतु उक्त बूटीको प्राप्त करनेकी इच्छा की, अस्तु उसने उस बूटीको खोजकर लानेके लिये बुर्जोई नामक अपने प्रसिद्ध हकीमको भारत वर्षमें भेजा। यहां आकर बुर्जोईने उस बूटीकी खूब खोजकी परन्तु वह नहीं मिली।

अन्तमें उसने एक संस्कृत प्रेमीसे अपना उद्देश्य कहा तो उनने उसे बड़े प्रेमपूर्वक यह समझाया कि, ऐसी कोई बूटी यहां तो उपलब्ध नहीं है, परन्तु पंचतंत्र नामक ग्रंथ अवश्य है उसीका उपदेश वह अलौकिक दिव्य बूटी है, जिसके सेवन मात्रसे मनुष्य इस जीवनमें सुखी और समृद्धिका वरण कर सकता है। बुर्जोईने उस ग्रंथका उपदेश सुना, एक प्रति प्राप्त की और पहलवी भाषामें उसका अनुवाद करके वह स्वदेश लौट गया। वहां जाकर उसने नौशेरवांको यह अनुवाद सुनाया। वह सुनकर खूब प्रसन्न हुआ, और उसे अभीष्ट पुरस्कार प्रदान किया।

उपरोक्त दंत कथामें वास्तविकता कुछ भी रही हो परन्तु इससे पंचतंत्रके प्रति विश्वकी अन्य भाषा भाषी लोगोंकी रुचिकी झलक अवश्य मिल जाती है।

प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक लाफॉंटेनने अपने कथा संग्रह 'फेबल्स' में भूमिकामें स्वीकार किया है कि इन कथाओंके लिये वह भारतीय साहित्यका आभारी है। उसने स्वीकार करते हुए लिखा है कि अधिकांश नवीन सामग्रीके लिये मैं भारतीय मुनि पिल्पेका आभारी हूँ। यह पिल्पे नाम अरबी अनुवादमें उपलब्ध 'विदबाह' का विकृत रूप है। 'विदबाह' विद्यापतिका अरबी रूप है, जो कि पंचतंत्रके अरबी अनुवाद 'कलीलह और दिमनह' में आया है।

हमारे पूर्वज बड़े मेधावी थे, इसीलिये उन्होंने वैदिक वाङ्मयके कठिनतम ज्ञानको अत्यन्त सरल रूपमें छोटी छोटी कथाओंके माध्यमसे हमारे सामने प्रस्तुत किया है, पर हमने उनके प्रचारकी ओर बहुत कम लक्ष्य दिया है, डा. 'महेन्द्र' के ये विचार इस विषयमें प्रेरक और ग्राह्य हैं—

(1) Macdonell, A, A:... A History of Sanskrit literatures, (1058) Page 370.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'हमारे पुराणोंमें जो छोटी छोटी कथायें हैं उनमें भारतीय संस्कृतिका खजाना छिपा हुआ है। अनेक प्रकारके उच्च कोटिके उपदेश, ज्ञानसूत्र, प्रतीक, उपयोगी तत्व इनमें भरे पड़े हैं। हमारे पुराणोंमें हमारे उन पूर्वजोंकी यशो गाथाओंका संग्रह है, जिनसे हमारा संस्कारों और रक्तका संबंध है। वे स्वभावतः हमें प्रिय हैं। इनका प्रभाव केवल हमारे मस्तिष्कपर ही नहीं, हृदयपर भी पड़ता है। यदि हम पुराणोंकी कथाओंको ही सुनायें तो इन अलौकिक कथाओंके साथ ऐसी कथायें भी सुननेको मिलती हैं, जो हमारे अन्धकारमय जीवनमें प्रकाश उत्पन्न करती हैं, जो हमारे इतिहासकी कसौटीपर भी सत्य उतरती हैं।

पुराण स्वयं अपने पाठकोंकी त्रुटियोंको पहचानते और शंकाओंका समाधान करते हैं। उनकी कथाओंको कह और सुनकर जो आनन्द और उच्च जीवनके लिये प्रेरणा मिलती है, वह वर्णनातीत है। पौराणिक गाथायें तो हमारे वे भण्डार हैं, जिनमें छोटी छोटी वस्तुसे लेकर बडीसे बडी वस्तु एक स्थानपर सरल ढंगसे सजाकर रख दी गई है। हम उनके एक मात्र अधिकारी हैं। फिर यदि हम उनकी उपेक्षा करें तो यह हमारा ही तो दुर्भाग्य है।

सचमुच अपने हमने ही पूर्वजोंके इस महान धनकी उपेक्षाकी जब कि दूसरे राष्ट्रोंने इसे अपनाया और अपने साहित्यको समृद्ध किया। विदेशोंमें अनेक भारतीय लोक कथायें लोक प्रिय हुईं, उसने विदेशी भाषाओंके साहित्यको सम्पन्न किया। अनेक राजाओं, सम्राटों, खलीफाओं, पादरियोंने उनसे अपना ज्ञान प्रशस्त किया तो करोडों विदेशी पाठकोंने इनसे अपना मनोरंजन भी किया है।

इन लघुकथाओंने करोडों विदेशियोंपर भारतीय संस्कृतिके महान गौरवकी छाप अंकित की, और अन्ततः वे उनके साहित्यमें घुल मिल करके उनके साहित्यकी ही निधि बन गईं और आज स्थिति यह है कि उनके वास्तविक स्वरूपको समझनेके लिये गम्भीर अन्वेषणकी आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

हमारी इसी अमूल्य निधिकी उपेक्षाकी ओर लक्ष्य करते हुए हिन्दीके मूर्धन्य साहित्यकार पं. सत्यकाम विद्यालंकारने हिन्द पाकेट बुक्स प्रा. लि. दिल्ली द्वारा प्रकाशित पंचतंत्रमें लिखा है—

'हमारे देशवासी अपने अमूल्य साहित्यके प्रतिगत लम्बे अरसेसे उदासीन रहे, यह उनकी मानसिक पराधीनताका चिन्ह है। किन्तु अब जब कि हमारा देश स्वतंत्र हो चुका है, हमारा यह कर्तव्य है कि हम सभी अपने अक्षय कोषको पहचानें।

इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये पंचतंत्र जैसे अमर ग्रंथोंको सर्व सुलभ करनेकी बडी आवश्यकता थी। पंचतंत्रको हिन्दीमें पॅकिट बुकके सस्ते संस्करणमें प्रकाशित होते देखकर मुझे संतोष हो रहा है। इधर कुछ ही समय पूर्व संसारकी सबसे अधिक लोकप्रिय संस्था 'पाकेट बुक इंक.' ने भी पंचतंत्रके अंग्रेजी अनुवादका सस्ता संस्करण प्रकाशित किया है, इस अनुवादकी लाखों प्रतियां बिक चुकी है।'

सचमुच आजतक हमने अपनी संस्कृति अपने साहित्यकी उपेक्षा ही तो की है, अब हमें चेत जाना ही चाहिये और संस्कृतकी इस विश्व व्यापकतासे प्रेरणा लेकर संस्कृतके इन अमर ग्रंथोंका अध्ययन कर जीवनमें उतारकर भारतीय संस्कृतिकी रक्षा करनी है। ○ ○ ○

संस्कृत-पाठ-माला

[२४ भाग]

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

प्रतिदिन एक घण्टा अध्ययन करनेसे एक वर्षमें आप स्वयं रामायण-महाभारत समझ सकते हैं।

२४ भागोंका मूल्य	१२)	१।)
प्रत्येक भागका मूल्य	॥)	≈)

संस्कृत पुस्तकें

१ कुमुदिनीचंद्र	४)	॥≈)
२ सूक्ति-सुधा	।-)	-)
३ सुबोध संस्कृत-ज्ञानम्	१।)	।)
४ सुबोध संस्कृत व्याकरण		
भाग १ और २, प्रत्येक भाग	॥)	≈)
५ साहित्य सुधा (पं. मेधाव्रतजी) भा. १	१।)	।)

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योगेश्वर कृष्ण और नारी

(लेखिका— श्रीमती शक्ति शर्मा)

प्रत्येक वर्षकी भांति इस वर्ष भी हम श्रीकृष्ण जन्माष्टमीका पुनीत पर्व उत्साहसे मना रहे हैं। इसके साथ ही श्रीकृष्णके जीवनकी पुण्य स्मृतियां और उनके साहसपूर्ण कार्य स्मृति पटलको झकझोर देते हैं। श्रीकृष्णका स्मरण होते ही हमारे सामने एक ऐसा व्यक्तित्व आ जाता है जिसमें चरित्रका अद्भुत विकास है। मानव कल्पना चरित्र की जिस ऊंचाईका स्पर्श कर सकती है, उनके चरित्रका हम वैसा ही विकास पाते हैं। साधारणतः हम यही देखते हैं कि जीवनके किसी एक क्षेत्र विशेषके उत्तम कार्य करने पर कोई व्यक्ति महापुरुषत्वका वरण कर लेता है, परन्तु हमारे आजके श्रद्धा-अर्घ्यके पात्र तो ऐसे विलक्षण थे कि जीवनके जिस क्षेत्रमें भी उन्होंने प्रवेश किया, सफलता उनकी अनुगामिनी रही और श्रीकृष्णके दिव्यत्वसे वह क्षेत्र स्वयं चमक उठा। बंकिम बाबूके शब्दोंमें, 'ऐसा सर्वगुण सम्पन्न और सर्व पाप रहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं हैं, न किसी देशके इतिहासमें और न काव्यमें।' प्रस्तुत निबन्धमें हमने योगेश्वर कृष्णके नारी विषयक दृष्टिकोण पर ही विचार करना है। दुर्भाग्यसे उनके जीवनका यही पक्ष अत्यन्त हीन कोटिकी भ्रान्तियोंका शिकार रहा है।

इस प्रकारकी भ्रान्तियोंका मूल स्रोत पौराणिक साहित्य और विशेषतः भागवत है जिसमें उन पर नारीके प्रति पाशविक वासनाके वशीभूत होकर अश्लील कार्योंमें रत रहनेके आरोप है जिनसे हमारे साहित्यमें ऐसे दूषित प्रसंगों की सृष्टि हुई है।

जिनका उद्घाटन करनेका अर्थ होगा शिष्टताकी सीमाओंकी ऐसी अवहेलना जो किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं। जहां यह तथ्य कि श्रीकृष्ण पर विशाल साहित्यकी रचना हुई, महापुरुषोंके प्रति हमारी श्रद्धाका सुन्दर परिचायक है, वहां यह देखकर हमें दुःख भी कुछ कम नहीं होता कि यह अधिकांश दूषित भावनाओंसे ही प्रेरित है। इस प्रकार हमने इस महापुरुषको अत्यन्त हीन रूपमें प्रस्तुत कर उन्हें विदेशियोंकी दृष्टिमें गिरानेका अपनी संस्कृतिके प्रति महान् अपराध किया है। इस प्रकार हमने चिर जागरूक समाजनायकको अवांछनीय बना दिया, संयम, शालीनता और मर्यादाके पोषकको वासनाका घृणित कन्दुक बना दिया और बना दिया हाय रे दुर्भाग्य! नारीके परित्राता, उसके सम्मान और उसकी लाजके लिये बडीसे बडी शक्तिको ललकारनेवाले असाधारण तेज और शक्तिके पुंज श्रीकृष्णको नपुंसक, धूर्त और लम्पट।

महाभारतके युद्धके जहां और कई कारण थे, वहां नारी के सम्मानकी रक्षाका प्रश्न भी इसमें निहित था, यह न मानना असत्यकी अवहेलना ही कही जा सकती है। अनेक राज्य खंडोंमें बंटे भारतको एक सूत्रमें बांधना जहां उनका मुख्य लक्ष्य था, वहां बुद्धिहीन वृद्धों, पक्षपाती राज्य सत्ता और कुंठित शस्त्रवाले वीरोंके अत्याचारोंसे पीडिता द्रौपदीकी करुण पुकारने उनके अंतस्तलको झकझोर दिया था। यह कारण गौण होते हुये भी महत्वपूर्ण है। अत्याचारी चेदिराज शिशुपालके अत्याचारों और क्षुद्र वासनाका शिकार होनेसे बचानेके लिये उन्होंने रुक्मिणीका पत्नी रूपमें वरण कर उसे विरल सौभाग्य प्रदान किया था। उनका गृहस्थ जीवन इतना उच्च था कि उसे अनुकरणीय समझते हुये भी हम अपनी वर्तमान स्थितिमें उसका अनुकरण करनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं। १२ वर्ष तक पत्नी पास रहते हुये भी जो तप उन्होंने किया तथा उसके फलस्वरूप उन्हें प्रद्युम्न जैसा तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, क्या कहें हम उनके उस संयमको जिसने उन्हें गृहस्थी होते हुये भी ब्रह्मचारी रखा। यदि हम लोग जो ब्रह्मचारी कहलाते हुये भी गृहस्थियोंसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी अधिक संयम हीन रहते हैं, इस दृष्टान्तसे समझ पाते कि नारीके प्रति उनके स्वस्थ और उज्ज्वल दृष्टिकोणको तो हमारे इतिहासके पन्नों पर कालिमा न पोती गई होती।

शत्रुओंका दलन करनेमें जहां हमें उनकी शूरवीरताके दर्शन होते हैं, वहां मित्रजनोंके लिये वह पूर्ण रसमय होनेके कारण रसिकोंमें अग्रणी थे। उनकी मोहिनी शक्ति अद्भुत रहती थी कि बरबस नर नारी उनकी ओर खिंचे जाते थे। व्यक्तित्व रसका स्रोत था। कहीं अन्याय हो तो वह वीर रसकी सजीव मूर्ति बन जाते। पीडित और असहायोंकी प्यास वह अपने हृदयमें उमडते प्रेम रससे बुझाते। उनकी इसी रसमयताके कारण ही ताजने मुसलमानी होते हुये भी उन पर कुर्बान जानेकी बात कही। और मीराने तो सब कुछ छोड उनके प्रति पूर्ण आत्म समर्पण कर दिया। आंसुओं के जलसे प्रेम बेल सींचनेवाली इस वियोगिनीने बडी तन्मयतासे उनके गीत गाये। वह संसार जो उसका दर्द नहीं समझ पाया, उसके लिये उपेक्षाकी ही वस्तु हो सकता है। उसके लिये तो मनकी पीड समझनेवाला 'गिरिधर गोपाल' ही अपना हो सकता है और दूसरा कोई नहीं।

आजके दिन हमने कृष्णके नारी विषयक दृष्टिकोणको समझना है। समानाधिकारकी बात होने पर और विभिन्न क्षेत्रों में काम करने पर भी नारीका शोषण आज पूर्णतः बन्द नहीं है आज एक नहीं अनेकों नर पिचाश ऐसे हैं जो उसके शील पर कुदृष्टि रखते हैं। इसके विरोधमें हमने अपनेको तैयार करना है और दृढतासे उनको समाप्त कराना है। तभी यह पर्व मनाना सार्थक है। देवी रुक्मिणीके नाथ, द्रोपदीके परित्राता, सूरके 'रसिक शिरोमणि' मीराके 'भक्त वल्लभ, व्रज वनिताओंके 'मनमोहना' और आधुनिक नारी अपने परित्राणके लिये जिनकी पुण्य स्मृति बडी श्रद्धासे हृदयमें संजोये हैं, उस दिव्यतम् विभूति श्रीकृष्णको हमारा कोटिशः प्रणाम।

लखनऊ विद्यापीठकी एम्. ए. की

परीक्षाके लिये ऋग्वेदके सूक्त

लखनऊ विद्यापीठकी एम्. ए. (M. A.) की परीक्षामें ऋग्वेदके प्रथम मंडलके पहिले ५० सूक्त रखे हैं। हमारा हिंदी अर्थ, भावार्थ, स्पष्टीकरण आदि नीचे लिखे सूक्तोंका छप कर तैयार है—

				मूल्य	डा. व्य.
१ मधुच्छंदा	ऋषिके	१२०	मंत्र	१)	।)
२ मेधातिथि	,,	१२०	,,	२)	।)
३ शुनःशेप	,,	१०७	,,	१)	।)
४ हिरण्यस्तूप	,,	९६	,,	१)	।)
५ कण्व	,,	१२५	,,	२)	॥)
यहांतक ५० सूक्त ऋग्वेदके प्रथम मंडलके हैं।					
६ सव्य	ऋषिके	७२	मंत्र	१)	।)
७ नोधा	,,	८५	,,	१)	।)
८ पराशर	,,	१०५	,,	१)	।)
९ गौतम	,,	२१४	,,	२)	॥)
१० कुत्स	ऋषिके	२५१	मंत्र	२)	॥)
११ त्रित	,,	११२	,,	१॥)	।=)
यहांतक ऋग्वेदके प्रथम मंडलके सूक्त हैं।					
१२ संवनन	ऋषिके	१९	मंत्र	॥)	=)
१३ हिरण्यगर्भ	,,	१२७	,,	१)	।)
१४ नारायण	,,	३०	,,	१)	।)
१५ बृहस्पति	,,	२०	,,	१)	।)
१६ वागम्भृणी	ऋषिकाके	८	,,	१)	।)
१७ विश्वकर्मा	ऋषिके	१४	,,	१)	।)
१८ सप्तऋषि	,,	७	,,	॥)	=)
१९ वसिष्ठ	,,	९४५	,,	७)	१॥)
२० भरद्वाज	,,	७७३	,,	७)	१॥)

ये पुस्तक सब पुस्तक-विक्रेताओंके पास मिलते हैं।

मन्त्री— स्वाध्यायमंडल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमंडल (पारडी)' पारडी, जि. सूरत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरुणोंमें राष्ट्रसंरक्षक होनेकी क्षमता

चीनके आक्रमण होनेसे भारत जाग उठा है। और अपने तरुणोंमें 'राष्ट्रके संरक्षक होनेकी क्षमता' कितनी है इसका विचार करने लगा है। चीनके आक्रमणसे यह जाग्रती भारतमें हुई है, इसलिये चीनके आभार मानने चाहिये, इसलिये कि चीनने हमें जगाया है। जगानेवाला उपकार ही करता है।

गुजरात युनिवर्सिटीने अपना एक रिपोर्ट प्रकाशित किया है, जिसमें अपने अनेक वर्षोंके अनुभवसे यह लिखा है, कि गुजरात युनिवर्सिटीके पदवी धरोंमें 'सैकडा पांच भी तरुण सैनिक होनेके लिये योग्य नहीं हैं।' यह युनिवर्सिटीका रिपोर्ट है इसलिये यह लेख विचार करने योग्य है।

शिक्षित सैनिक

आज कलके सैनिकोंमें शिक्षित सैनिक ही होने चाहिये। पूर्व समयमें समझा जाता था कि, सेनामें अशिक्षितोंसे भी काम हो सकेगा। पर आज कलकी लडाइयोंमें अच्छे शिक्षित सैनिक हों तो ही वे आज कलकी लडाई जीत सकते है। अशिक्षितोंसे यह कार्य उत्तम रीतिसे नहीं हो सकता?

इसलिये शिक्षित तरुण सेनामें भरती होने चाहिये यह बात सत्य है। यदि यह सत्य है तो हमारे देशके शिक्षित तरुण सेनाके योग्य कितने हैं और सेंकडा कितने शिक्षित तरुण सेनामें भरती हो सकते हैं, इसका विचार करना चाहिये।

हमारे देशमें स्कूल, हाईस्कूल और कालेजोंमें तरुणोंको शिक्षित किया जाता है। शिक्षामें शारीरिक, इन्द्रिय विषयक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक तथा सांघिक ऐसे अनेक प्रकार हैं। इनमेंसे कौनसी शिक्षा इन शिक्षणालयोंमें दी जाती है? हमारे अनुभवसे हमारे शिक्षणालयोंसे केवल 'साक्षरता' का ही शिक्षण दिया जाता है, मनका सुधार, बुद्धिकी प्रगल्भता और आत्मिक दिव्य शक्तिका विकास इनका विकास आज कलके शिक्षणालयोंमें होता है ऐसा कोई नहीं कह सकता। शारीरिक शिक्षाके लिये सप्ताहमें २।३ पीरियड होते हैं और वे शामके ३।४ बजे होते हैं। यह समय शारीरिक विकासके लिये साधक है ऐसा कोई नहीं कह सकता। क्योंकि इस ३।४ बजेके समयमें शरीर और मन थका हुआ रहता है। और थके हुए समयमें शारीरिक शिक्षणका समय रखा तो शरीर बढनेके समयमें शरीरका बिगाड होनेकी संभावना अधिक होगी। इसलिये यह दोपहरका समय शारीरिक व्यायामके लिये योग्य नहीं है।

व्यायामका समय

भारत उष्ण देश है, इसलिये प्राचीन समयसे जो व्यायामके अखाडे चल रहे है वे प्रातःकालके ४ बजेसे ७ बजेतक ही चलते हैं। और उनका परिणाम शरीरपर अच्छा होता है। इस कारण हमारे लडकोंके लिये व्यायाम सबेरे सात बजे मिलना चाहिये।

परन्तु हमारी सब पाठशालाएं १० बजेके बाद शुरू होती हैं और शारीरिक व्यायामका समय उनमें ३ या ४ बजे होता है। क्या यह योग्य समय शरीर मजबूत होनेकी दृष्टीसे है इसका विचार होना चाहिये।

दस बजेका समय

स्कूलों और हायस्कूलोंका समय १० बजेका होता है। क्या यह ठीक है? देखिये १० बजे शालामें जानेके लिये ९ बजे भोजन करना पडता है। ९ बजे भूख लगनेका समय नहीं हैं। भूख न लगनेकी अवस्थामें भोजन पेटमें डाला जाय तो वह वहां पचता नहीं सडने लगता है।

भोजन करके लडका पुस्तकें लेकर स्कूलमें जानेके लिये भागने लगता है, इसलिये रक्त पांवोंमें जाता है, स्कूलमें जाते ही अभ्यास शुरू होता है। इस कारण रक्त मस्तकमें जाता है। और पेटमें गया अन्न पचानेके लिये आवश्यक रक्त मिलता नहीं। इस कारण वहां पेटमें अन्न सड जाता है। इस कारण तरुणोंमें पेटके और वीर्य बिगडनेके विकार अधिक हो रहे हैं। जो यह समय ठीक किया जाय तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होंगे नहीं। भारतीय तरुणोंकी निर्बलता इस अशुद्ध समझके कारण बढ रही है।

ठीक समय विभाग

समय विभाग ठीक कैसा हो सकता है इसका अब विचार करते हैं—

सबेरे ७ बजे स्कूलमें विद्यार्थी आजाय—

७- ७-३० तक व्यायाम, सूर्यनमस्कारका करें

७-४५ -११ तक पाठशालाका अभ्यास हो

११-२ तक विद्यार्थी घरमें जाकर भोजन करे

२-५ तक विद्यार्थीयोंका शामका अभ्यास हो

५-६ खुली हवामें खेल कूद करे

इस तरह करनेसे, अर्थात् ७ से ७.३० शारीरिक व्यायाम करनेसे तरुणोंके शरीर बलवान् बनेंगे और आवश्यकता होने पर तरुण सेनामें भी भरती हो सकेंगे।

इस प्रकार करनेके लिये पाठशालाएं दो समयकी करनी चाहिये। व्यायामका समय सबेरे ७ से ७-३० ही रखना चाहिये। इस समय २०-२५ मिनिट किया हुआ सूर्यनमस्कारका व्यायाम ठीक तरह करनेसे शरीरको बलवान् कर सकता है और ऐसा करनेसे हमारे तरुण सुयोग्य वीर बन सकते हैं।

दूरसे आनेवाले छात्र

स्कूलोंमें ३-४ मैलों परसे भी विद्यार्थी चलकर आसकते हैं, वे किस तरह सबेरे आसकते हैं? यह प्रश्न यहां उत्पन्न होता है। स्कूलमें सैकडा २० इतने ही विद्यार्थी बाहर गांवके होते है। वे डब्बेमें अपना भोजन रखकर साथ ले जाय, अथवा स्कूलके बोर्डिंगमें उनसे धान्य लेकर उनके भोजनका प्रबंध किया जाय। यह कदापि योग्य नहीं कि २० विद्यार्थियोंके खातर ८० विद्यार्थीयोंके दुर्बल रखा जाय। अतः स्कूल दो समयका करना ही चाहिये और सबेरे ७ बजे आते ही २०।२५ मिनिट सूर्यनमस्कारका दस आसनोका व्ययाम उनसे करवाया जाय तथा १५ मिनिट विश्राम करनेके पश्चात् स्कूलका अभ्यास शुरु हो जाय।

यदि सबेरे ७॥ बजे व्यायाम होते ही एक प्याला भर गायका दूध देनेकी व्यवस्था हो तो बहुत ही अच्छा है।

सामवेद-भाष्य

सामवेद भाष्यकार श्री स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज।

'सामसंस्कार भाष्य' नामसे यह सामवेदका उत्तम भाष्य संस्कृतमें तथा हिंदीमें है'

प्रथम भाग मूल्य ८) रु.

द्वितीय भाग मूल्य ८) रु.

डाकव्यय पृथक् है। अति शीघ्र मंगवाइये।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल पारडी,
पारडी (जि. सूरत)

दूध न मिले तो पूर्व दिन चणे या मूंग (दोनो साबित) भिगा कर सबेरे उबाल कर व्यायमके पश्चात् एक एक मुट्ठी भर हरएकको खानेके लिये दिये जांय तो भी अच्छा होगा।

तरुणोंका शारिरीक सुधार करनेकी यह आयोजना है। ऐसा करनेसे एक वर्षमें हमारे तरुणोंकी शरीर स्थिति सुधर सकती है और सैनिकीय शिक्षा लेनेके योग्य वे बन सकते हैं और अपने राष्ट्रकी सुरक्षा करनेका हरएक कार्य कर सकते हैं। ऐसे तयार तरुण भारतमें होंगे तो कोई दूसरा राष्ट्र भारत पर आक्रमण भी नहीं कर सकेगा।

तरुणोंकी उन्नति करनेकी जिम्मेदारी जिन पर है वे तथा तरुणोंके रिश्तेदार तथा राष्ट्र रक्षण करनेके इच्छुक इसका विचार करें।

गुजरात प्रांतके शिक्षा विभागके संचालकजीसे हमारी बात हुई थी और उन्होंने इस विषयके अनुकूल सरक्युलर हायस्कूलोंको भेजा है, जिसके लिये हम उस शिक्षा विभागके संचालको हार्दिक धन्यवाद देते हैं और हम आशा करते हैं कि इस सूचनाके अनुसार कार्य शुरू होजाय।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्व समाज बनाओ

[लेखक— श्री विश्वामित्र वर्मा, विषहर जंगल, (रीवा) म. प्र.]

★

अन्धलोक

अनन्त असीम आकाशमें अगणित तारे चमकते हैं, सूर्य प्रकाश चन्द्र पर प्रतिबिम्बित होकर चमकता है, परन्तु हमारी पृथ्वी स्वयं प्रकाशित नहीं है। पृथ्वी पर स्वयंका प्रकाश न होनेसे इस लोकको सूर्य चन्द्र पर आश्रित रहना पड़ता है, यदि सूर्य चन्द्र न हों तो पार्थिव वनस्पति एवं प्राणी मिट जांय। पृथ्वी पर मिट्टी, पहाड़ जंगल और सागर होनेसे, इसके रंग पीले हरे गहरे मिश्रित होकर दूर लोक वासियोंको धुंधले भूरे रूपमें यह दिखती होगी, जैसे कि विभिन्न सुन्दर प्रकाशवान् मंगल शुक्र और शनि आदि यहांसे देखे जाते हैं। हमारी पृथ्वीकी आयु एडिन वर्गके प्रोफेसर होम्स (Holmes) की वैज्ञानिक खोजोंके अनुसार तीन अरब पैंतीस करोड़ वर्ष है, इतनी आयु होकर भी इसमें स्वयं प्रकाश न आया और मानवका अवतार विकास सात लाख वर्ष पहले होना आरंभ हुआ।

इतने कालका इतिहास प्रमाण साक्षी नहीं है, वैज्ञानिकोंकी कल्पना है। पुरातत्व और इतिहासको ढूंढें तो पता चलता है कि पांच सौ वर्ष पहले कोलम्बसने अमेरिकाका पता लगाया, एक हजार वर्ष पहले आल्फ्रेड इंगलेण्डका राजा था, और पीछे चलें तो दो हजार वर्ष पहलेका ब्रिटिश या भारतीय इतिहासका क्रम बद्ध निश्चित रूप नहीं मिलता, उस समय ब्रिटिश द्वीप समूह अज्ञान था, और केवल किंवदंती प्रचलित मिलती हैं, तीन हजार वर्ष पहले रोम साम्राज्यका नाम भी न था, परन्तु केवल रोम नगर था, उस समय केवल चीन और इजिप्टके मध्य देश शिक्षित सुसंस्कृत थे, पांच हजार वर्ष पहलेसे कहीं कुछ एवं अनिश्चित इतिहास मिलता है, दो करोड़ वर्ष पहले तो मानव था ही नहीं।

पार्थिव इतिहासमें जबसे मनुष्य आया, उसकी आयुमें तबसे पतिवत समय तक प्रायः मानवने नहींके बरा बर उन्नतिकी, वह दुःखकी अवस्था बीती। शताब्दियां बीतीं, पेड़ों और गुफाओंसे जब मानव पृथ्वी पर घर बनाकर रहने लगा। उसकी जातियां क्रमशः फैलीं और भौगोलिक परिस्थियोंके अनुसार विकसित होने लगीं। इन जातियोंका इतिहास विकास होते होते अब आज हम जो चमत्कार देखते हैं उससे सन्तुष्ट प्रायः होकर भविष्यकी भयंकर कल्पना करते हैं, मानवकी बुद्धिसे चकित होते हैं, परन्तु इतना कहना होगा कि अब तक उसमें अपनी व्यावहारिक व्यवस्था सम्यक् स्थिर बनाये रखनेके लिए समुचित ज्ञान न हो पाया। उसकी सामाजिक, आर्थिक वैज्ञानिक एवं राजनीति व्यवस्थामें सदैव विषमता, संकीर्णता और संघर्ष, होता है।

यह परिवर्तन लगभग प्रति ६ हजार वर्षके लगभग हर बार प्रलय रूपसे होता है जब संभवतः पृथ्वी पर महान् जिस लोकमें प्रकाश न हो, अन्धेरा हो, और मानवको अन्धेरेमें देखने व्यवहार करनेके लिए बनावटी प्रकाश और ऐनक (चश्मे) की आवश्यकता पड़े, दूसरे लोकोंसे प्रकाश पानेके लिए आश्रित रहना पड़े, विचारोंमें अन्धेर, अज्ञान, संकीर्णता विषमता भरी हो, सब व्यवहार अन्धेर पूर्ण, अनियमित अनिश्चित हों, जो सजातीय मानव होकर भी परस्परसे भ्रान्त और न पहचान कर परस्परको ही मारने लूटते खाते हों, न्यायके नाम पर अन्याय, ज्ञानके नाम पर अज्ञान हो, बाहुल्यमें भी अल्पता, और विनाशक विज्ञानमें विकास मानकर गर्व करते हों, निश्चय ही यह लोक अन्धलोक है और यहांका सर्व श्रेष्ठ कहा जानेवाला मानव अन्धज्ञानी है, अविज्ञानी, अज्ञानी है। किसीने कहा है कि दुनियां पागलखाना है। जिस प्रकार यहांके मानव समाजमें विकृत मस्तिष्क अथवा पागलोंके लिए एकान्त पागलखाना होता है, उसी प्रकार दूसरे लोकोंमें जो लोग पागल होजाते हैं उन्हें यहांके लोक धक्का देकर इस अन्धलोक पृथ्वी पर भेज देते हैं।

सूर्य तारे चमकते हैं, पृथ्वी नहीं चमकती, और पृथ्वी तथा सूर्यके मध्य अन्तरिक्षमें भी बहुतसे छोटे छोटे अन्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोक धूल पाषाणवत् मंडराते है। इस पृथ्वी पर मानवने सीमाएं करके टुकडे बाट लिए। भौगोलिक प्रभावसे रंग रूप रहन सहन, अनुकूलतासे देश, समाज, सम्प्रदाय, बनाकर वह अर्थनीति, धर्म और राजनीति-कपटनीतिसे अपनी अपनी सम्पत्ति, बेटा-बेटी स्त्रीको भी सम्पत्ति बनाकर परस्पर लेन देन व्यवहारमें संकीर्णता और संघर्ष उत्पन्न किया है। इस व्यवस्थाको अन्धविश्वास कहें तो उचित होगा, जो अज्ञानके कारण उत्पन्न है, जिसे भ्रमसे ज्ञानविज्ञान माना जाता है। अन्धविश्वास अर्थात् अन्धे और भ्रान्त होकर अन्धेरेको प्रकाश मान कर व्यवहार करना। प्रकाशके अभाव में कुछ न दिखनेके कारण भय होता है, इस भयमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएं होती हैं, और उससे छुटकारा पाने 'अज्ञात' की अनेक कल्पित रूपोंमें पूजा होती है।

अज्ञान

मानव जबतक अपने विराट् शरीरको नहीं पहचान पाता, जब तक वह विराट् आत्म दर्शन नहीं कर लेता, तब तक वह अपनेसे भिन्न, अथवा अनेक देवताओं, देवियों, भूत प्रेतोंसे भय खाता उनको मूर्तिमान कल्पनामें पूजता है। आत्मसाक्षात्कार और ज्ञान प्रकाश होने पर, उनकी व्यर्थता सिद्ध होने पर उनकी पूजा बन्दकर देता है, त्याग देता है। वह जान लेता है कि आत्मा-परमात्मा एक है, सारा विश्वका मानव और सारे प्राणी आत्मवत्, अभिन्न, एक हैं, जैसे प्रकाशसे अन्धकार लुप्त हो जाता है, फिर प्रकाश लेकर अन्धकार ढूंढने पर भी नहीं मिलता। फिर भय नहीं रहता किसीको भेट पूजा नहीं चढाता, खुशामद प्रार्थना नहीं करता। ज्ञान होने पर सब बाह्याडम्बर मिट जाता है। पार्थिव मानवीय सम्बन्ध व्यवहारमें भेद यथा राष्ट्रीय, साम्प्रदायिक जातीय, गरीब अमीर ऊंचनीचके भाव लुप्त होकर, नष्ट होकर साम्य भाव स्थापित होता है। अज्ञानी इनमें बंधे हुए संघर्ष करते हैं, आधुनिक युगमें ज्ञानी-अज्ञानी समान अन्ध विश्वाससे आचरण करें तो ज्ञानी या विद्वान भी अज्ञानीकी श्रेणीमें हो जाते हैं, अन्यथा ज्ञानी होनेसे क्या लाभ, क्या विशेषता?

अब हम अन्धलोकके मानव समाजमें अन्धविश्वास एवं अज्ञानका दर्शन कराकर और सम्यक् सुधारकी ओर संकेत कर क्रमशः आर्थिक अन्धनीति, राजनीति-कपट-नीति, तथा अन्ध वैज्ञानिक अज्ञानकी चर्चा करेंगे।

अन्धेर

दिल्लीसे प्रकाशित सिनेमा-कहानी विषयक 'रंग भूमि' मासिक पत्रके जून १९६० में समाचार प्रकाशित था एक पचास वर्षकी महिलासे उसकी भाभी उनका एक नव युवक प्रेम करता था। उसने अपने आफिसके समझदार सहयोगियोंसे, उस महिलासे विवाह करनेके विषयमें परामर्श किया। शुभ चिन्तकों (?) ने समाज परम्परा और धर्म रिवाजके आधार पर सलाह दी कि यह प्रेम अनुचित, और विवाह बे मेल है, वे दोनों विजातीय थे। युवकने निराश हृदय होकर, आघात न सहन कर, आत्महत्या कर ली। इससे भारतीयोंकी 'प्रेम' सम्बन्धमें संकुचित भावनाका दर्शन हुआ। हमें याद है किसीने विवाह निमंत्रण पत्रिकामें निम्न पंक्तियां लिखी थी—

'परिणय प्रणय बन्धन जगत्में
सर्व श्रेष्ठ विधान है।
आत्म विनिमय है परस्पर
महा मंगल दान है॥'

आदर्श और व्यवहारमें कैसा ढकोसला! विवाह 'आत्म विनिमय' के बदले आयु, समाज जातिके विचारसे आज तक 'शरीर विनिमय' बन गया। प्रेम आत्मीय गुण है, उसे शारीरिक दुर्गुण बनाकर, राष्ट्र एवं समाजके एक बहु मूल्य तत्व-युवकको दुनियांसे ही, लोगोंने परम्परासे अनुचित बताकर-उठा दिया, हत्या कर दी।

उसी पत्रमें एक पत्नीकी आत्म कहानी छपी है जिसका शराबी पति पैसे कमाने और अपने व्यसनकी आवश्यकता पूर्ण करनेके उसको जबदस्ती अपने मित्रों, अधिकारीयों, अथवा अपरिचत धनिकोंको लाकर व्यभिचारमें प्रेरित करता था, अपने ही घरमें। दाम्पत्य जीवनमें यह दूकानदारी! भारतकी स्वतंत्रतामें लगभग प्रत्येक व्यक्तिके विचार और आचरण भी किसी हदतक आजाद होगये हैं, सचमुच अकल्पनीय वृत्तान्त अखबारोंसे मिलते हैं और यत्र तत्र वार्तामें सुने जाते हैं।

बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'करेंट' के १२ अक्टूबर '६० के अंकमें भारतकी राजधानीमें होनेवाले अन्धेर और अनाचारके शर्मनाक और भयावह समाचार छपे हैं। इन समाचारोंसे जनता सचेत होती है परन्तु इनको रोकनेके लिए स्वतन्त्र सरकार नपुंसकवत् रहती है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्योंकि जब तन्त्र विधानमें अपनी रोजी और रोटी कमाने की स्वतंत्रता सबको बराबर है, कोई गुलामी-नौकरी करता अपना समय और दिमाग किराये पर देता है, कोई परिश्रम करके अपना शरीर देता है, या कोई क्षणिक 'शरीर' किराये पर आनन्दाभासके लिए परस्पर राजी होकर देते-लेते है, इस स्वतंत्र व्यवसायमें सरकार और कानूनको क्या नुकसान ? जो सम्पन्न भोग वासनाके व्यसनी हैं, और जो गरीब हैं, जो ठगे, लूटे या मारे जाते हैं वह उनकी कमजोरी, बेवकूफी, नालायकी तथा लाचारीके कारण। जो अपनी बहिन बेटियों, स्त्री अथवा अन्यको पैसे कमानेका साधन बनाते है वे परस्पर राजी होकर ऐसा करते हैं।

इसमें सरकार अथवा कानूनको आपत्ति नहीं क्योंकि वे स्वतन्त्र जनताके हितमें बनाये गये हैं। एक सन्यासीने बताया था कि एक व्यक्तिने अपनी बेटी एक रात्रिके लिए एक उच्चाधिकारीके पास अर्पित करके दस हजार सरकारी रकम व्यवसायसे अर्जितकी। बेटीसे पूछा गया कि ऐसा क्यों करती हो, जवाब दिया, हम अपने माता-पिताकी सम्पत्ति हैं, हमें पूंजीवत् नियोजित (Invest) करके पिताजीको इतनी रकम लाभमें मिलती है, तो इसमें धर्म विवाहकी हानिके अपेक्षा हम 'नगद धर्म,' अच्छा समझते हैं, इसमें मुझे हानि क्या है ? धर्म-कर्मका विचार तो उस अधिकारीका कर्त्तव्य है जो क्षणिक भावावेगके लिए हमारी गरीबी-लाचारीसे लाभ उठाता, जनताके अर्पित धनको सरकारी कोषसे तिकडम और द्वैतनीति (Treachery) से उडेलता है।

पश्चिमी स्वतंत्र संस्कृति (?) के उन्मादमें अनुगामी होकर, अपनी संस्कृति छोडकर धर्म-निरपेक्ष सरकारने विवाह-परिवारके स्वैच्छिक कानून बनाकर बढती हुई आबादी रोकने और जन्म संख्या घटानेके लिए सन्तति नियमनके वैज्ञानिक साधन-उपकरण और शल्य क्रिया स्त्री पुरुषोंको वन्ध्या- नपुंसक बनानेका व्यापक प्रचार परिवार नियोजनके रूपमें जो आरंभ किया उससे लाभ उठानेके लिए ही यह नया व्यवसाय खडा हो गया।

एक फौज !

१९५१ की जनगणनामें ३५,३८,७९,३९४, भारतमें अविवाहितों, विधुरों, कुमारियों एवं विधवाओंकी संख्या अवस्थाके अनुसार निम्न प्रकारसे बतायी गयी है।—

आयु-क्रम	पु. वर्ग अविवाहिता	विधुर स्त्री वर्ग	अविवाहित	विधवाएं
१५-२४ वर्ष	१६६,२७,५३७	३,८४,४३८	५१,८४,४४७	८,२६,५८२
२१-३४ वर्ष	३७,००,९०३	१०,५१,१८७	७,७१,५७८	११,११,८३६
३५-४४	११,४९,५७८	१५,५९,०७६	२०३,५८६	३,८७९,३०९
४५-५४	६१३,०१२	२०,३७,९६२	१,७३,०४८	५३,११,८११
५५-६४	२,९८,६२३	१९,८८,९९१	८८,९४३	५९,०१,१०८
६२-७४	१,०४,३४३	११,१९,७५१	३७११५	१८,४६,४९१
७५-से ऊपर	४६,४३८	७,००,६१०	१८४६८	१३,६७,२३७
अज्ञान उम्र	५१,४९७	१४,३९५	६०१३८	१५,२०१

इसमें ५-१४ वर्ष आयुके विधुर ४१०२८, और बालविधवाएं ११२,८२८ शामिल नहीं है। और संभवतः उनमें बहुतोंको आजीवन एकाकी रहना पडेगा।

राष्ट्र, जाति गोत्रके संकीर्ण भेदको त्याग कर यदि ये परस्पर सहयोग करें तो सबकी गति मजेमें चले, परन्तु विदेशोंमें भी राष्ट्र और जाति भेद, आर्थिक विषमता तोडकर विवाह होते हुए भी हरेक देशमें कुमारों कुमारियोंविधुरों और विधुरोंकी संख्या अधिक है। विदेशोंमें प्रायः सभी शिक्षित होनेके कारण यद्यपि परस्परको चुननेमें स्वतन्त्र होते हैं फिर भी अपने सुखकी इच्छा विचार कर और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वतंत्रताके अभावमें परस्परका स्वभाव मेल नहीं खाता। जो विवाह कर भी लेते हैं वे मन मुटावके कारण परस्परको तलाक दे देते हैं। विवाहित होकर भी भारतमें अब स्वैच्छिक स्वतंत्रताके कानून बन जाने पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आर्थिक लेन देनके संबंधसे बहुतोंमें परित्याग होजाने पर अथवा कुमारों कुमारियोंकी अवस्था बढ जाने पर तथा उनकी जातिमें कन्याएं अथवा लडके कम होने पर, लडके लडकियोंको एकाकी रहना पडता है। जाति गोत्र और दहेज उन्हें बाधा डालती है। समाजमें ऐसे लोग खोटे रुपये-पैसेकी भांति होते हैं और जीवनसे निराश, अथवा गुप्त कृत्यका नतीजा खुलने पर गर्भपात या आत्मघात कर लेते है। उत्तर प्रदेशकी पुलिस विभागने १९५४की वार्षिक रिपोर्टमें २३६५ को पुरुषोंको आत्महत्या कई कारणोसे बतायी गई है जिसमें १०८० पुरुष और बाकी १२८५ स्त्रियां थी।

आत्म हत्याके आंकडे और परिणाम

कारण	पुरुष	स्त्रियां	कुल
असह्य लम्बी बीमारीके दुःखसे सामाजिक, पारिवारिक बदनामीसे पागल पन इत्यादि बेकारी, गरीबी, कर्ज, आर्थिक कठिनाइयोसे प्रेम एवं विवाहमें निराशा परीक्षामें न पास होनेसे—	४६०	४७१	९३१
	१८०	५६५	८६५
	१३६	८९	२२५
	१२०	७५	१९५
	४९	५६	१०५
	३५	९	४४
	१०८०	१२८५	२३६५

उसी वर्ष जिन लोगोंने आत्महत्याके प्रयत्न किये किन्तु असफल हुए वे ये है—

कारण	पुरुष	स्त्रियां	कुल
असह्य लम्बी बीमारीके दुःखसे गृह कलह, बदनामी आदिसे पागलपन इत्यादि गरीबी, बेकारी, कर्ज, आर्थिक कारणोसे विवाह, प्रेम में निराशासे परीक्षामें न सफल होनेसे—	४५	१४	५९
	७१	७६	१४७
	२०	—	२०
	१९	९	२८
	९	१२	२१
	९	७	१६
	१७३	११८	२९१

बंगालमें सामाजिक दुरवस्था और अन्धेरसे जो वासनाका बाजार चलता है उसकी चर्चा बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहि ब्लिट्स,के १९६० अंतिम चरणके एक अंकमें कही गई थी उसको पढकर अपने भण्डाफोड पर बंगालवालोंने रोष बरसाया था, लोगोंको अपने कुकर्मोंके भण्डाफोड सुननेका साहस नहीं, कुकर्म करने और चलते रहने देनेमें, बदनामीसे बचे रहनेमें अपना धर्म और इज्जत समझते हैं। धर्माचरणमें सत्य बोलनेकी शिक्षा दी जाती है, न्यायालयमें सत्यकी शपथ दिलाई जाती है, शासन पद्धतिमें उच्च अधिकार पद मिलनेवालोंको सत्यनिष्ठा और राष्ट्र भक्तिकी शपथ खानी पडती है, परन्तु अपने स्वार्थी या स्वाभाविक अनैतिक कर्मों एवं दुर्गुणोंकी सत्य कहानी सुनने पढनेका साहस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कितने व्यक्तियों, समाज सेवियों एवं राष्ट्र सूत्रधारोंको है? यह बडा भयंकर रोग है। किसके हृदय और कर्म, भीतर बाहर पारदर्शक कांचकी भांति स्वच्छ बेदाग है? अपने विचार-कर्मके मल-विकार वैज्ञानिक दवाओंसे दबाने पर भी नहीं छिपते, वरन् एटमबमकी तरह फूटकर व्यक्तिके मन-शरीर-व्यवहारमें प्रकट होते हैं जैसे कोई भी बीज अंकुर बन कर पौधा प्रकट होने पर पत्थरसे दबा देनेसे वह टेडे रास्ते पृथ्वीके भीतरसे बाहर प्रकाशमें आनेको मार्ग खोज लेता है।

सभ्यदेशमें !

न्यूयार्क अमेरिकन गृहस्थ संस्थाके संचालक डॉ. पोपेनोने एक भाषणमें सिनसिनाटीमें कालेज कुमारियोंकी वैवाहिक असफलता बताते हुआ कहा है कि कालेजमें पढनेवाली कुमारियाँ विवाहित जीवनके हेतु बहुधा अयोग्य हो जाती हैं। कालेजकी शिक्षा पूरी करके निकलनेवाली २५ से ५० प्रतिशत कुमारियाँ विवाह करनेमें सफल नहीं होतीं; जो विवाह कर भी लेती हैं वे अविवाहितोंकी अपेक्षा चौगुनी संख्यामें तलाक देती रहती हैं। ऐसी दशामें ये शिक्षिताएं जीवनमें असन्तुष्ट रहती हैं और लाचार होकर अक्सर कहती हैं। कि परमात्माने हमें क्यों स्त्री बनाया? उन्हें स्त्री होनेका बडा दुःख है।

कालेजके विद्यार्थियोंने जब शिक्षा पद्धतिके विरोधमें आन्दोलन उठाया है, वे कहते हैं-यह शिक्षा पद्धति और ये संस्थाएं हमें जीवनके सर्वोच्च महत्त्वपूर्ण अनुभवके हेतु बिलकुल बेकार बना देती हैं। हमें इस बातकी शिक्षा नहीं दी जाती कि सगाई कैसेकी जाय, अपने लिए जीवन साथी कैसे पसंद किया जाय, विवाहित जीवन कैसे सुखी और सफल बनाया जाय, गृहस्थ धर्म कैसे निभावें, बाल-बच्चोंका पालन पोषण कैसे करें, उन्हें राष्ट्रके हेतु किस प्रकार योग्य बनावें, सम्बन्धियोंसे कैसे अच्छा बर्ताव करें?'

अमेरिकामें कुंवारेपन, वैधव्य विधुरता और तलाकके परिणामसे स्वतंत्रताके उन्मादमें कितना नैतिक पतन है और परस्पर स्वतंत्र सहयोगसे अकस्मात अनैच्छिक गर्भाधान, प्रसव और गर्भपात होता है, यह अमेरिकी सेक्सरिसर्च इन्स्टीट्यूट, इण्डियाना यूनिवर्सिटीके तत्वावधानमें हुई खोजका परिणाम एक पुस्तक 'प्रेग्नेंसी, बर्थ एण्ड अबार्शन (Pregnancy, Birth and Abortion, 30 shilings- villiam Heinomanv) पुस्तकसे स्पष्ट मालूम होता हैं। बताया गया है कि जेलमें ५२९३ गोरी नारियां, ५७२ काली (निग्रो) और १२०९ मिश्रित स्त्रियां थीं। इनमें उम्रके हिसाबसे इनके कुंवारे पन अथवा शादीके बाद गर्भाधान, गर्भपात अथवा प्रसवकी चर्चाके साथ ही उनकी शिक्षा और धार्मिक विश्वास भी वर्णित है।

इसे पढकर सभ्यता और उनके नैतिक चरित्रका भण्डा-फोड होकर बडी चौंका देनेवाली बातें मालूम होती हैं। दस प्रतिशत गोरियोंको शादीके पहले ही गर्भ होगया ८९ प्रतिशत गर्भ तो 'वैज्ञानिक कला' से गिराये गये, पांच प्रतिशत अपने आप गर्भपात अथवा मरे बच्चे पैदा हुए ६ प्रतिशत जीवित जन्मे। जिन गोरी स्त्रियोंने अपने पतियोंको तलाक देकर पृथक जीवन-यापन अपनाया उनमें ७५ प्रतिशत दूसरोंसे व्यभिचार करातीं थीं जिनमें २० प्रतिशत गर्भवती होजाती थीं, इनके ८० प्रतिशत अपराधयुक्त गर्भपात करती थीं। काली (नीग्रो) नौकर स्त्रियोंके विषयमें बताया गया है कि पन्द्रह वर्ष उम्र होते अशिक्षा और दासतामें व्यभिचार, गर्भाधान और गर्भपात होना उनके लिए स्वाभाविक अनिवार्य समझा जाता है। जेल जीवनमें परस्पर संयोगसे अवैध गर्भपात और अवैध जन्म तो साधारण बात है। जेल अधिकारियोंने बताया कि केवल एक युवती अक्षत योनि है क्योंकि वह समाजने ही धुली मिली रहती है, दूसरोंसे नहीं मिलती जुलती।

स्वतंत्र भारतमें पश्चिमके ऐसे ही कीटाणुओंका बीजारोपण हुआ है, परन्तु कट्टर पंथी, अंध विश्वासी परम्परावादी समाज अभी इतना बेशरम नहीं हुआ है परन्तु यहां धर्म और इज्जतकी रक्षा करते हुए कितने अनुपातमें यहां भी उतनी अनैतिकता है उसकी खोज नहीं हुई आंकडे उपलब्ध नहीं हैं परन्तु लुके छिपे श्वसुर-पुत्रवधू, बाप-बेटी, भाई-बहिन, मा-पुत्र और अन्योंमें असंबंधित अनुपयुक्त संयोग और परिणामतः अवैध जन्म, गर्भपात और स्त्रियोंका तिरस्कार बहिष्कार होनेपर उन्हे जीवन असह्य होनेपर वेश्या बनकर अनैतिक कर्मोंकी दूकान खोलनी अथवा आत्महत्या करनी पडती है। यद्यपि कानूनसे वेश्यावृत्तिपर अंकुश डाला जा चुका है, परन्तु अब उनका जीवनोपार्जनका साधन क्या बना है, उनको कितना गृहस्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवनमें बसाया जा चुका है इत्यादिकी जानकारी कानून कितना दे सकता है।

जो अनैतिक कर्म स्वतंत्रतामें होता है, उससे अधिक सामाजिक व्यवस्थाके बन्धनमें, घर-घर दाम्पत्य जीवनकी ठेकेदारीमें धर्मके नामपर क्या नहीं होता जब कि स्त्रीपर पुरुषके अधिकारसे सब कुछ होता है? स्वतन्त्र स्त्री तो केवल अपनी आर्थिक आवश्यकता एवं कमजोरीसे अनैतिक कर्म करती है परन्तु गार्हस्थ्य जीवनमें स्त्री तो बिकी हुई गुलामकी भांति रहती है। उसे पतिकी इच्छा पर रहना पड़ता है। संसारमें सर्वत्र यही व्यवस्था है।

निरक्षर-ज्ञान

एक मजदूर स्त्रीने मुझसे कहा- कि 'हम स्त्रियां बहुत सुन्दर हों, अनेक गुण हों, कलाएं हों परन्तु ये सब गुण, कलाएं और सुन्दरता हमारे स्वयंके लिए किस अर्थ की? पुरुष बिना हमारी कद्र कौन करेगा? हम पुरुषके मनोरंजन एवं गृहस्थके लिए दो पहिएकी गाडीके समान अभिन्न उपयोगी हैं। यदि संसारमें केवल स्त्रियोंकी सृष्टि होती तो हम नष्ट हो जाते। यदि केवल स्त्रियां होती तो संसार न चलता। एक पहिएकी गाडी नहीं चलती, डगमग होती है, गिर पडती है। और पुरुष बिना हम बेकार हैं। हमें साथ रख लो, तुम्हारी सब प्रकार सेवा करते हुए, गृह प्रबंध करते हुए तुम्हें आराम देंगे, सब परेशानियोंसे दूर रख, तुम्हारा मनोरंजन करेंगे। तुम्हारी उन्नति होगी। हमारे पास पांच सौ रुपये हैं, तुम्हें अर्पित कर देंगे, नौकरी छोड दो, व्यापार करो। जीवन प्रेमपूर्वक सहयोगसे निभानेसे निभता है।

मुझे अकेला, मजेमें खाता-पीता सांड्-वत् देखकर ही उसने ऐसा कहा था। बहुत-बहुत वर्षोंकी बात है, कई सौ स्त्रियां तरह तरहकी बातें, सब गंभीर सिद्धान्त-भरी, और वे निरक्षर थीं।

मैंने कहा- कुछ सोच समझ लेने दो।

उसने कहा- इसमें सोचना समझना क्या? क्या कोई मुकदमा थोडेही है कि कानून देखना पडे? स्त्री-पुरुष आपसमें मन मिलाकर जीवनकी गाडी चलाते हैं। हमें अपनी रक्षार्थ पुरुषकी जरूरत पडती है, पुरुष हमारी ढाल है, यही हमारा बन्धन है, एक बैल गाडीमें दो पहिये, एक धुरीमें पिरोये रहते हैं, यदि धुरी न हो तो गाडी नहीं चल सकती। नहीं चल सकती। जीवन अंधे लंगडेका साथ है। हम अंधी हैं, हमारे हृदय है, पुरुषमें दिमाग है पर वह हृदयके बिना लंगडा है। दोनोंका सहयोग ही संसार है। देखो बिजली भी दो तारसे उजेला देती है, काम करती है।

शिक्षितोंमें जीवन दर्शन समझानेकी इतनी बुद्धि आ जाय तो उन्हें अविवाहित रहने, योग्य वर-कन्या मिलनेमें कोई बाधा न हो, तलाक न हो, कोई सामाजिक साम्प्रदायिक जाति-गोत्र, लेन-देन, दहेज और अहंकार-स्वार्थकी संकीर्णता न हो, परन्तु कितने अफसोसकी बात है कि शिक्षित सम्पन्न विकसित होकर भी मानवको हजारों वर्षमें भी अबतक सहयोग-बुद्धि न आयी।

स्वार्थ भावना

जो हाल पूर्वका है वही पश्चिमका चाहे वे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय अथवा कानूनको मानते हों, उस विषमताका एक मूल कारण है— अपना अपना स्वार्थ! लडकी पक्षके अभिभावक चाहते हैं कि हम अपनी लडकीको ऐसी जगह शादी करें जहां उसको सुख मिले। वर सम्पन्न हो, वर विद्वान् उद्योगी हो, इत्यादि। वर पक्षके लोग चाहते हैं— लडकी सुन्दर, सुशील, सेवाभावी, पतिव्रता होकर रहे, हमारे लडकेको सुख दे।

दोनों पक्षके, वर-कन्या सुख चाहते हैं, परस्परको सुख देने, आत्मत्यागकी भावना किसीमें नहीं। इसी खींचतानसे सुख किसीको न मिलकर, संघर्ष होता रहता है, त्याग, मुकदमे बाजी, तलाक होते रहते हैं, जीवनमें एक एक स्त्री-पुरुष बार-बार १०-१५ तलाक और पुनर्विवाह करते हैं।

चाहे धर्म-सम्प्रदायकी बात सोचें या कानून व्यवस्थाकी खोज करें, सब रीति रिवाज व्यवहार सैकडों वर्षोंसे सर्वत्र ही अंधियाधसान चल रहे हैं क्योंकि दाम्पत्य सम्बन्धी व्यावहारिक नियम मनुष्योंने धर्मशास्त्र रचकर मनुष्यवर्गके हित बनाये, और विशेष उच्च वर्गके शिक्षित ब्राह्मणों एवं विद्वानोंने बनाये जिसमें स्त्रियों और शूद्रोंको नीच और अयोग्य समझा गया, जिनको विद्या पढनेका अधिकार भी नहीं दिया गया। कोई भी रिवाज या धर्मशास्त्र शूद्रों या स्त्रियोंने नहीं बनाये। कितना इन पण्डितोंका स्वार्थ, संकी-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र्णता और अन्धेर ! इनमें स्मृतिकारोंकी, विशेष कर मनुकी धूर्तता तारीफ करने योग्य है ।

इसका विस्तार मनुस्मृति अध्याय ४, ८, १०, ११ में, गौतम धर्मसूत्र अध्याय १२, आप स्तम्ब धर्म सूत्र पटल १०, खण्ड २७, विष्णु स्मृति ५, संवर्त संहिता १५२ से १६६, वसिष्ठ धर्मसूत्र ६, १४, शतपथ ब्राह्मण ३, काठक संहिता ३१, गौतम स्मृति १२, पराशर स्मृति २।१९·२०, ८-३३ तथा ५५-८८ में मिलेगा ।

हिमालयके अंचलमें रहनेवाले एक शिक्षित बी. ए. सज्जनने बताया कि वहां (सर्वत्र ग्रामीण भारतमें) स्त्रीको पांवका जूता सदश समझा और व्यवहार किया जाता है, जब जूता पुराना हो जाय, फट जाय अथवा जब हमारा जी चाहे, पुराना फेंक दें और नया पहन लें, उसी प्रकार स्त्री भी चाहे जब त्यागी और नयी प्राप्त की जा सकती है। स्त्री घरका सब काम प्रातः चार बजेसे रात्रिके बारह बजेतक करती है, पशु-पालन और खेतीका भी सब काम करती है, पुरुष आराम करता, घूमता फिरता दूध मलाई दही, माल टाल खाकर मौज करता है, जो बचता है वह स्त्री खाती है, नही बचता, न सही । वह शिकायत नहीं कर सकती पुरुषोंका हुक्म मानना उसका कर्तव्य है पति उसका परमात्मा है। यदि किसी दिन भूख लगनेपर या समय पर भोजन न बनाया तो पुरुष उसे लात-मुके भी मारता है । यदि विवाह होनेपर उसने सर्व प्रथम पुत्र प्रसव किया तो ठीक; अन्यथा कन्या उत्पन्न होने पर वह निन्दनीय होती है और लगातार तीन बार कन्या उत्पन्न हो तो उसका मुख देखना दोष और पाप माना जाता है। दाम्पत्य जीवनमें हंसी खुशीके दिन नहीं बीतते । ऐसे दाम्पत्यसे तो वेश्या अच्छी ! जो स्वतंत्र रहकर एक रात गा नाचकर ५००) रुपया लेती मौज करती है ।

अन्ध परम्परा

'तीक्ष्ण' मूल नक्षत्रमें प्रसव होनेपर स्त्री सन्तान सहित गंगापुत्रको दान करनेकी प्रथा कभी रही होगी परन्तु यह प्रथा किसने चलायी होगी ? अवश्य ही ब्राह्मणोंने । और फल स्वरूप गृहस्थको जब यह सहन न हुआ तो उसके प्रतीकमें पूजापाठ दक्षिणा आदिका विधान आरंभ हुआ उसीके अनुसार अब जब तब किसी यहां 'सताईसवां' का पाखण्ड किया जाता है, संसारमें अन्यत्र अन्य समाजमें कई ऐसे जन्मको दोष नहीं माना जाता । यही पाखण्ड अब पशुओंमें प्रचलित है । श्रावण महीनेमें यदि घोडीको प्रसव हो तो दूषित मानकर गंगा पुत्रको दे दी जाती है । तीक्ष्ण उत्तराषाढ और श्रवणकी संधि अभिजित् नक्षत्रमें गाय जाने और माघ मासमें भैंस ब्याय तो इन प्रसूता पशुओंपर गंगापुत्रका हक होता है । वह इन नक्षत्रोंमें अपने गांवसे अपने क्षेत्रके गांवोंमें दूर दूर दौरा करता है और सम्पत्ति पाता है क्योंकि इन नक्षत्रोंमें ब्याई हुई गाय भैंसका दूध मालिकको खाना दूषित समझा जाता है, दूसरोंको नहीं, अतः गंगापुत्रसे मूल्य तय करके दूसरा व्यक्ति खरीद लेता है । यदि मालिक न दे गांवके लोगोंको एकत्र कर उनके द्वारा उसपर यह रिवाज उसके सिर लाद जाता है, उसे देनी पडती है, वर्ना गांवके लोग उस मालिकसे व्यवहार-सहयोग बन्द कर दे, आग, पानी आदि लेना-देना बहिष्कृत कर दें ।

इसी प्रकार गौर श्वेत वर्णोंने अपना आधिपत्य अन्य वर्णों पर रखा है, मनुस्मृतिके अनुसार ब्राह्मणोंने हर दशामें अपना हक सर्व श्रेष्ठ और सबसे अधिक रखा है, चारों वर्णोंमें विवाह कर सकते हैं, निम्न वर्णके लोग निम्नतर वर्णोंमें विवाह करें, अपनेसे उच्च वर्णमें नहीं । ब्राह्मणोंका विशेष गुण मीठी वाणी बोलना, चाटुकारी कवितामें निपुण, कल्पना-रचना करना, और आत्मबली बहुबली क्षत्रिय राजाओंकी तारीफ खुशामद कविता श्लोक सुनाकर, आशीर्वाद उपदेश देकर उनसे दान दक्षिणा लेकर वैश्यों और शूद्रोंको पशुवत् कठोर कर्म 'कृषि' को उत्तम बनाकर उसमें संलग्न करने और सबकी सेवा करके ही स्वर्ग जाते, स्त्रीको पतिसेवामें ही परमात्माका दर्शन और मुक्तिका मार्ग बताया दिखाया है, वेद-विद्या पढने और समानाधिकारकी बातें नहीं बतायीं, क्योंकि इनको मूर्ख रखकर, विकास न करने देकर, स्वयं परिश्रम न कर केवल मीठी बातें करके मौज करनेका विधान बनाया । जन्मसे मरण तक सब विधान और मरनेपर मोक्ष मार्गपर भी ब्राह्मणोंने अपना नियंत्रण रखा है, इस परम्पराके भ्रम जालसे सैकडों वर्षोंसे समाजके सब अंगों, जातियोंको अंधवत फंसा रखा है, सब मानते हैं । कोई व्यक्ति न माने तो सब लोग उसका सामाजिक व्यवहार बहिष्कार कर दें, आग पानी देना, आपसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सब व्यवहार बंद कर दें। इस अन्ध विश्वासको अनिच्छासे जबरदस्ती उन्हें निभाना पडता है।

अथर्व !

वैदिक और प्राग्वैदिक युगमें आजके समान साम्प्रदायिक एवं स्वार्थकी संकीर्णता नहीं थी वरन् वैदिक मंत्रोंको समझनेसे मालूम होता है कि वह काल सम्यक् शांति और साम्यवादका ज्ञानयुग था जब कि मानवोंमें कोई भेद न था, कोई वर्ण न था, वरन् एक वर्ण था, एक राष्ट्र और एक धर्म था, वह स्वभाविक था किन्तु कालान्तरसे प्रलयंकर परिवर्तन एवं स्वार्थगत इतिहास और भौगोलिक विस्तारसे मानवोंमें रंग-रूप रहन सहनमें परिवर्तन होनेसे अब वही वैदिक संस्कृति बदलते बदलते अनेक रूपा होकर अत्यन्त मलिन और विकृत हो गई है जिससे मानव मानवको नहीं पहचानता।

जिस प्रकार अलग अलग भरे हुए पानीके हौजों का पानी परस्पर दीवालोंकी सीमामें बन्द होनेसे एक-दूसरेमें नहीं जा सकता (Watar-tuht-compartment) उसी तरह इस एक लोदेकी पृथ्वी पर अनेक देशोंकी सीमाओंसे मानवोंके आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक व्यवहार भी परस्परसे अलग और बन्द हो गये हैं कि परस्परसे स्पर्श भेद रखकर रोटी-बेटीका सम्बन्ध नहीं करते। और अपनी सम्प्रदाय समाज सीमामें व्यवस्थित भी नहीं रहते। वैदिक युगोंमें विवाहेच्छु युवक किसी इष्ट कन्याका परिणय करनेके लिए कन्याके पिताके पास जाकर उसकी कन्याकी भिक्षा मांगता था, अब उसके विपरीत, बेटीवाले वर खोजने दूर दूर पांव रगडते, धन भी देते हैं, और बेटा पक्षके लोग अधिक धनकी मांग करते बेटीवालेको कंगाल बना देनेका प्रयन्त करते हैं। बेटा पक्षवालोंकी संकीर्ण भावना और अर्थलाभके लालचमें सैकडों कन्याओंका आजीवन कुमारी रहना, गुप्त अनैतिक कृत्य और फलतः आत्महत्या भी करना पडता है, और विवाहेच्छु युवक भी इष्ट कन्याको जीवन संगिनी नबना सकनेसे कारण अभिभावकोंकी संकीर्णता और लालचवश अनेक बाधाओंके कारण आत्महत्या करनी पडती है। धर्म और परम्पराके नामपर कितना अंधेर।

धर्म और शास्त्रोंकी मान्यता कितनी है एवं उनकी सार्थकता क्या ? जाति गोत्रको लेकर ही इतनी दुरवस्था हुई, कूप मण्डूक बनकर सब दुर्व्यवस्था हुई। भारतीय कट्टर पंथी लोग धर्म शास्त्रादिकी दुहाई देते हैं परन्तु वे इन्हें कितना जानते हैं ? प्राचीन परिपाटीकी लकीर पीटनेवाले, बुद्धिके फकीर इन शास्त्रोंको यदि सचमुच जानें और मानें तो वास्तवमें सब आधुनिक पाखण्ड दुर्व्यवस्था दूर हो जाय, इससे जाति गोत्र, लेन-देन ऊंच नीच भावनासे मुक्त स्वतंत्र रीतिसे समाज सुव्यवस्थित हो जाय। वर्ण संकरतासे नाक सिकोडनेवाले बुद्धिपूर्वक उन ग्रन्थोंको पढें जिनको वे मानते हैं तो आधुनिक रक्त-संकर बननेके वैज्ञानिक साधनोंको पहचाने जो वर्ण संकरतासे कहीं अधिक दूषित एवं घातक है जो मानवको अधिक पतित, रोगी, घृणित और पशुसे भी नीच बना रहा है- वह है रोगोंके इलाज एवं निरोधके नामपर वैज्ञानिक इंजेक्शन और दवाओं द्वारा इलाज।

ये रोग निरोधक अभियानके टीके और इंजेक्शन क्या हैं ? अनेक घृणित रोगोंसे आक्रान्त रोगियों एवं पशुओंके मल, मूत्र, रस, रक्त, मांस, मवाद, बलगम आदिसे बने हुए विषाक्त कीटाणुओंसे मिश्रित घृणित पदार्थ जो मानवके रक्तमें घोले जाते हैं, क्या इनसे मानव रक्तसंकर, रोगी, हीन नहीं बनता ? फिर वर्ण संकरता क्या इससे अधिक पतित है।

इतिहास मानवके सर्व देशी आवागमनका साक्षी है जिससे सदैव जातियोंका सम्मिश्रण हुआ है। आज संसारमें कौनसी जाति हैं जिसमें किसी विदेशी जातिका रक्त सम्मिश्रित न हों, विवर्ण न हो ? इस परम्परागत वर्णसंकरताके विरुद्ध कौन व्यक्ति अपनी जाति गोत्र रक्तकी पवित्रताका हजार पीढी तकका भी प्रमाण दे सकता है ? किसके पुरुषोंने व्यभिचार नहीं किया अथवा विवर्ण सम्बन्ध नहीं किया कोई प्रमाणित कर सकता है ? अपने माता-पिताको स्वयं कौन ज्ञान पूर्वक जानता है ? अमुक ही पुरुषके ही रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ हूं, ये ही मेरे माता-पिता हैं, ऐसा स्वयं ज्ञान किसको है और कौन प्रमाणित कर सकता है ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभेद संयोग

इतिहास-पुराणोंमें भी ऊंच-नीच वर्ण व्यवस्थासे मुक्त होकर अनेक लोगोंके सम्बन्धका वर्णन है। ब्राह्मण शुक्राचार्यने क्षत्रिय राजा प्रियव्रतकी कन्या ऊर्जस्वतीसे विवाह किया, ब्राह्मण शृंगीने राजा लोमपादकी पुत्री शान्तासे; राजा दशरथकी गोदली हुई पुत्रीसे विवाह किया था; ब्राह्मण जमदग्निने सूर्यवंशी राजा प्रसेनजितकी कन्या रेणुकाको व्याहा जिसके बेटे परशुराम हुए। क्षत्रिय राजा गाधिकी कन्या सत्यवतीको ब्राह्मण ऋचीकने व्याहा। ब्राह्मण पिप्पलादने क्षत्रिय कन्या पद्माको व्याहा। (उत्तरार्ध शिवपुराण, अध्याय ३०)

ब्राह्मण अगस्त्यने क्षत्रिय कन्या लोपामुद्रासे व्याह किया ब्राह्मण सौभरिने क्षत्रिय राजा मान्धाताकी कन्यासे, तथा देवलोककी अप्सारा मेनकासे विश्वामित्र क्षत्रिय राजाने शकुन्तला उत्पन्नकी जिसका विवाह राजा दुष्यन्तसे होने पर पुत्र भरत हुआ और देश भरतखण्ड कहलाया। (देवी भागवत पुराण-स्कन्ध) महाभारतके भीमसेनने हिडिम्बा राक्षसीसे विवाह किया जिसका बेटा घटोत्कच हुआ।

उच्च वर्णका निम्न वर्णसे विवाह होनेके भी प्रमाण हैं— क्षत्रिय राजा प्रियव्रतने ब्राह्मण विश्वकर्माकी लडकी बर्हिष्मतीसे विवाह किया। वायु पुराण अध्याय २८ में कर्दम ऋषिकी कन्या काम्याका विवाह क्षत्रिय राजा प्रियव्रतसे होना लिखा है जिससे प्रियव्रतके दस पुत्र और दो पुत्रियां हुई। क्षत्रिय राजा नीपने ब्राह्मण शुक्राचार्यकी पुत्री कृत्वीसे विवाह कर ब्रह्मदत्तको पैदा किया, इसी कुलमें मुद्गल पैदा होनेसे मौद्गल्य गोत्र चला (भागवत् पुराण स्कन्ध ९।२२)

क्षत्रिय राजा ययातिने ब्राह्मण शुक्राचार्यकी लडकी देवयानीसे विवाह किया। जिससे पांच पुत्र हुए। ब्राह्मण कन्या ममताका विवाह एक नाईसे हुआ जिसके पुत्र मतंग महामुनि हुए। (महाभारत- अनुशासन पर्व, ५९ अ. २२)

वेश्या पुत्र वसिष्ठ मुनि और कर्दम ऋषि कन्या अरुन्धतीके विवाहसे शक्तृ या शक्ति नामक पुत्र हुआ जिसका चाण्डाल कन्या अदृश्यन्तीसे विवाह हुआ, इनका पुत्र पाराशर हुआ। (पूर्वार्ध- लिंग एवं शिव पुराण) । पाराशरने धीवर कन्या सत्यवतीसे विवाह किया। जिसके पुत्र वेद व्यास हुए जिनने पुराण रचे तथा जिनसे कौरव और पाण्डव हुए। (भविष्य पुराण १। २४-४९) तथा ऋग्वेद ७।३३।११

उत्तर पुराण, हरिवंश पुराणमें भी सभी वर्णोंका पारस्परिक संबंध होना पाया जाता है। क्षत्रिय राजा श्रेणिकने अपनी पुत्री वैश्य धन्यकुमारको दी थी। क्षत्रिय राजा जयसेनकी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिकर वैश्यको; अरिजय क्षत्रिय राजाने अपनी पुत्री भविष्यारूपा वैश्य भविष्यदत्तको दी थी। जिसने हस्तिनापुरके क्षत्रिय राजा भूपालकी कन्या स्वरूपासे भी विवाह किया था। वसुदेव क्षत्रियने वैश्य चारुदत्तकी पुत्री गन्धर्वसेनाको व्याही था और उसने उपाध्याय ब्राह्मण सुग्रीव और यशोग्रीवकी दो कन्याओंसे भी व्याहा था। क्षत्रिय राजा उपश्रेणिकने भील कन्या तिलकवतीसे विवाह किया जिसका पुत्र राज्याधिकारी हुआ। उत्तर पुराणमें लिखा है कि ब्राह्मण अग्निभूतकी एक पत्नी ब्राह्मण और दूसरी वैश्य थी (उत्तर पु. ७५।७१-७२) वैश्य पत्नीसे उत्पन्न चित्रसेना कन्या देवशर्मा ब्राह्मणको व्याही गई।

नागकुमार चरित्रमें लिखा है कि नागकुमारने वेश्यापुत्रियोंसे विवाह करके दिगम्बर मुनिकी दीक्षा ग्रहण की थी और जैनियोंके पूज्य बने रहे। चन्द्रगुप्तका विवाह एक ब्राह्मण कन्यासे हुआ था, जिनका बेटा अशोकका पिता था और अशोकने वैश्य कन्यासे विवाह किया था। हर्ष ब्राह्मण था और अपनी लडकी क्षत्रियको व्याही थी। विक्रमादित्यका आचार्य व्याधकी सन्तान था जिसका विवाह ब्राह्मणीसे हुआ था। कृष्ण भट्ट ब्राह्मणका प्रेम चाण्डाल कन्यासे होने पर मातंग पंथ चला।

जाति गोत्र कोई दैवी योजना नहीं वरन् देशकालगत इतिहाससे प्रभावित एवं विकृत मानव रचित व्यवस्थाएं हैं जिनसे कालान्तरसे बहुत विकार हुआ और अब मानव इनमें कूप मण्डूक बना हुआ समाजको विकृत करता है। यदि भारतीय सचमुच इन धर्म ग्रन्थोंको व्यवहारमें मानें तो विषमता संकीर्णता लुप्त हो जाय, यदि इनके अनुसार आचरण नहीं करना है तो इन्हें पानीमें डाल दो, यदि ये झूठे हैं तो इन्हें जला दो, सुनना पढना बन्द कर दो। अपना रिवाज अथवा ये ग्रंथ- इनमें अपनी अनुकूलता देखकर एकको अवश्य त्यागना होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महाभारत वनपर्व ३१३-१७ में इनका निर्णय करनेको लिखा है—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्। धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

बहुत तर्क करके भी कुछ निश्चय नहीं होता, ग्रन्थोंमें मत विभिन्न हैं, ऋषियोंके मत परस्पर मेल नहीं खाते, कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्णय गहरा है। अतएव महापुरुष लोग जो करें वही अनुकरणीय है।

ऊपर महापुरुषोंके उदाहरणोंसे जाति गोत्र तोडकर स्वच्छन्दिद मुक्त होकर विवाह करना लिखा है। सन्त कबीरने निष्पक्ष मानव भावसे लिख दिया है—

एक बूंद, एक मल मूतर, एक चर्म एक गूदा ।
एक ज्योति थै सब उत्पन्ना, को बाह्मन को सूदा ॥

जाति गोत्रके विषयमें तुलसीदासने लिखा है—

तुलसी जो जग शोध, अत मन निरोध कुछ शोध ।
चाहे ते पामर मन्दमति, सपनें सुख न सुबोध ॥

सब संसारकी खोज करना, मनको रोक लेना, अपने कुलके उद्गमका शोध करना जो लोग चाहते है, वे नीच और मूर्ख हैं, इन बातोंमें तो स्वप्नमें भी समाधान नहीं होता।

देशकाल परिवर्तन क्रमशः होते होते युगान्तरसे धर्म विचार व्यावहारिक व्यवस्थाएं बदलती हैं अतः अब उचित समय है कि सब मानव, ऋग्वेदके मन्त्रको एक समान वैदिक साम्यवादी संगठनसे सार्थक करें।

वैदिक साम्यवाद

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

ऋग्वेद १।१९१।२

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः
सह चितमेषाम्। समानं मन्त्रः अभिमन्त्रये
वा समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानस्तु वो मनो यथा वः सुहासति ॥

हम सब एक होकर प्रगति करें। सब मिलकर उत्तम प्रकार संवाद करें। सबके मन उत्तम संस्कार युक्त हों। पूर्व कालीन देव उत्तम ज्ञानी जिस प्रकार अपने कर्तव्यका पालन करते आये उसी प्रकार हम भी अपने कर्त्तव्यका पालन करें।

हम सबका एक विचार हो, हमारी सभा एक जैसी हो, सबका मन विचार युक्त हो, सबका चित्त भी सबके साथ ही हो। परमात्मा सबको एक विचारसे युक्त करता है, सबको अन्न और उपयोग सामग्री प्राप्त होती है।

हम सबका ध्येय समान ही हो, हम सबके हृदय समान हो, हम सबका मन समान हो, हम सबकी शक्ति उत्तम हो।

यह भावना एक व्यक्तिके लिए नहीं समस्त राष्ट्र संगठनके लिए है। विश्व समाज और विश्वराज्य व्यवस्थाके लिए भेद रहित वैसा सुन्दर वह प्रेरक पुरानी भावना है। हम इसे ग्रहण कर व्यवहार करें तो सब समस्याएं हल हो जायें।

दैवत-संहिता

		मूल्य	डा. व्य.
१	अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२	इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३	सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	॥)
४	उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	१)
५	पवमान सूक्तम् (मूल मात्र)	॥)	=)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथागत पर मांसाहारका मिथ्या दोषारोपण

[लेखक– आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा, ' पथिक ' बी. ए., कानपुर]

तथागत (महात्माबुद्ध) का जन्म कपिलवस्तु नगरमें सूर्यवंशान्तर्गत शाक्यवंशमें हुआ था। सुमंगलविलासिनी १ और ' महावंश ' २ की कथाओंमें शाक्योंका राजा इक्ष्वाकुका वंशज बताया गया है। ' विष्णुपुराण ' ३ से भी इसी मतकी पुष्टि होती हैं। ' महावस्तु ' ४ में शाक्योंको आदित्यबन्धु कहा गया है। आदित्यबन्धु और सूर्यवंशी एक ही बात है। सम्प्रति शाक्यवंशके प्रतिनिधि ' शाक्यसेनी सुराव ' हैं।

तथागतकी मृत्यु कैसे हुई, इस पर विद्वानोंके भिन्न भिन्न विचार हैं। कहा जाता हैं कि उन्हें ' सूकर मद्दवम् ' खिलाया गया था जो कि सुअरका मांस था। उसे वे पचा न सके। उन्हें अतिसार होगया और अन्तमें उसी रोगसे उनका कुशीनगर (वर्तमान कसियां जिल्देवरिया) में देहावसान होगया।

' सूकर मद्दवम् ' क्या पदार्थ है? इसके सम्बन्धमें महापरिनिब्बानसूक्त ' के भाष्यकारोंने अपने अपने विभिन्न मत प्रकट किए हैं। एक लिखते हैं— ' सुक्कमद्दो एक प्रकारकी रसायन का नाम है जो शारीरिक रक्षाके लिए अद्वितीय है। भगवान् बुद्धको पुष्ट, करनेके लिए यह रसायन खिलाया गया था '।

एक दूसरे भाष्यकार लिखते हैं कि— ' सुक्कमद्दो पंच गोरससे बना हुआ एक प्रकारका भात है, जो बुद्धको खिलाया गया था। ' ५

श्री बुद्धघोषाचार्यंकी टीका— सूकरमद्दवंतिनाति तरुणस्स नातिजिण्णस्स एक जेट्ठक सूकरस्स पवत्तमंसं। तं किर मृदुं चेव सिनिद्धं चहोति। तं पटियारापेत्वा साधुकं पचापेत्वा ति अत्थो। एक भणन्ति, सूकरमद्दवं ति पन मुदुओदनस्स पञ्चगोरसयूसपाचनविधानस्स नाममेतं, यथा गवपानं नाम पाकनामं ति। केचि भणन्ति सूकरमद्दवं नाम रसायनविधि, एवं पन रसायनत्थे आगच्छति, तं चुन्देन भगवतो परिनिब्बानं न भवेय्या ति रसायनं पटियत्तं ति।' ६

---

१ ' सुमंगलविलासिनी ' भाग १ पृष्ठ २५८ ६० तुलनाकरो आचार्य रामदेवजी तथा डॉ० सत्यकेतुजी ' विद्यालङ्कार ' कृत ' भारतवर्षका इतिहास ' तृतीयखण्ड, पृष्ठ १९८ (संवत् १९९० वि. में गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय, हरि-द्वारद्वारा प्रकाशित)

२ ' महावंश ' पृष्ठ १२–१४ [सम्पादितश्रीगेगर] तुलना करो उपरोक्त ' भारतवर्षका इतिहास ' तृतीयखण्ड, पृष्ठ १९८

३ ' विष्णु पुराण ' चतुर्थ खंड, अध्याय २२ पृष्ठ ३५७ [गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित, सं. २०१८ वि. पञ्चमसंस्करण]

४ ' महावस्तु ' २, पृष्ठ ३०३ तुलनाकरो, आचार्यरामदेवजीकृत ' भारतवर्षका इतिहास ' तृतीयखण्ड, पृष्ठ १९८

५ मासिक ' श्रद्धानन्द ' पत्र, दिल्ली, वर्ष ३, जनवरी १९३५ ई. संख्या ४, पृष्ठ १३ में प्रकाशित स्वामी चिद्घनानन्दजी संन्यासीका ' माथाकुंकर और बुद्धनिर्वाण ' शीर्षक लेख।

६ आचार्य धर्मानन्दको सम्बीकी मराठी पुस्तक ' भगवान् बुद्ध ' उत्तरार्द्ध, प्रकरण ग्यारह; तुलना करो मासिक पत्रिका ' विशाल भारत ' कलकत्ता, भाग ३५, मई १९४५ ई. अङ्क. ५, पृष्ठ १९२ १९३ में प्रकाशित श्री लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेयका ' मांसाहार और बौद्ध तथा जैन ' शीर्षक लेख।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात्— ' जो न बिलकुल बूढा हो और बिलकुल जवान, जो हो तो कम उमरका, पर खूब मोटा-ताजा, ऐसे सूअरका पका-पकाया मांस। वह नरम और चिकना होता है। उसे तैयार करके अर्थात् अच्छी तरहसे पका करके यह अर्थ समझना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि पंचगोरससे बनाए गए नरम भातका यह नाम है। जैसे कि ' गवपान ' एक विशिष्ट पक्वानको कहते हैं। कुछ लोगोंकी समझमें सूकरमद्दव नामक एक रसायन था। रसायनके अर्थ में ' ही उस शब्दका प्रयोग किया जाता है। चुन्दने बुद्ध भगवान्‌को यह पदार्थ इसलिए दिया कि उनका परिनिर्वाण न हो। ×

मूल श्लोक

' चुन्दस्स भत्तं भुंजित्वा कम्मारस्साति ये सुतं। आबाधं सम्फुसो धीरो पबाळ्हं मारणन्तिकं। भत्तस्स च सूकरमद्दवेन, व्याधि पवाह उदपादि सत्थुनो। विरेचमानो भगवा आवोच गच्छा मह्हं कुसिनारं नगरंति।' [दीर्घ निकाय महावग्गसूत्त, महापरिनिब्बानसूत्त, अध्याय ४]

' सूकरमद्दव ' का वास्तविक तात्पर्य और भाष्यकारोंका भ्रमः— ' तथागत ' जीवनमें कभी भी मांसाहार न किए, बरन् जीवन पर्यन्त उन्होंने मांसाहारके विरुद्ध उपदेश किया।

उनका जन्म शुद्धौदनके घर हुआ। शुद्धौदनकी यह उपाधि शुद्ध भोजनका व्यवहार करनेसे प्राप्त हुई थी। ७

' मांस भक्षण और कुकर्मका कलङ्क देवदत्तने बुद्धके ऊपर झूठमूठ ही लगा दिया था। वह बुद्धका एक शिष्य था और उसने अपने गुरुके प्राणपर भी आघात करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु इतने पर भी बुद्ध सदा उसे क्षमा कर दिया करते थे और उसे अपने साथ ही रखते भी थे। निसन्देह, जिस जोरसे मनुष्य एकदम निश्चिन्त रहता है उसी जोरसे उस पर घोर आपत्ति आती है। बुद्धको भी सांसारिक क्लेश भोगने पड़े थे।' ८

बौद्धमतकी आदि और प्राचीन शाखा ' हीनयान ' है जिसके ग्रन्थ पाली भाषामें हैं।

आठवीं शताब्दीमें भारतके प्रायः सभी बौद्ध सम्प्रदाय वज्रयान गर्भित ' महायान ' के अनुयायी हो गए थे। महायान शाखावाले तथागतकी मूर्तिकी पूजा, बोधिसत्वोंकी प्रतिमा, पूजा, भैरवीचक्र, मांस, शराब, प्रभृति पूरे वाममार्गके उपासक थे। उससे ' सहजयान ' भी कहने लगे।

इसी ' महायान ' शाखावाले तथागत पर मांसाहारका दोषारोपण करते हैं ऐसा सम्भव है।

' सूकरमद्दव ' का अर्थ ' सूअरका मांस ' कभी नहीं हो सकता है। यह तो ' दीर्घनिकाय ' के भाष्यकारोंकी कल्पनामात्र है।

मूल पालीमें ' सूकरमद्दव ' शब्द आया है जिसका अक्षरार्थ है— ' सूकर के मांसकी भाँति मुलायम '। यह गोबरछत्ते (छत्रक) के पौधेका नाम है। इसका अर्थ सूकरका मांस नहीं है जैसा लोग भ्रमवश समझते हैं। ९

× वही.

७ देखो ' भविष्यपुराण ' २।८३।११६ में लिखा है कि ' शुद्धौदन (भोजनकी शुद्धताके गुण) के कारण उनके यहां स्वयं भगवान्‌ने पुत्ररूपमें जन्मधारण किया '। तुलना करो ' अशोकावदान ' (पाइलुस्कीका फ्रेंच अनुवाद, पृष्ठ २५३), ' दिव्यावदान ' (कॉवेलवनीलद्वारा रोमन भाषामें अनूदित), श्री स्वामी महाराज योगिराजद्वारा सम्पादित व योगिराजद्वारा सम्पादित व योगिराज शिष्य मैत्रेय प्रणीत तथा पं० विश्वनाथ प्रसादमिश्र बी. ए. साहित्यरत्न द्वारा आंग्ल भाषासे आर्य भाषामें अनुवादित ' बुद्ध मीमांसा ' प्रथम संस्करण, पृष्ठ २५५ की पाद टिप्पणी।

८ देखो ' रायलएशियाटिक सोसाइटीका जरनहल, मई १८७१ ई. में डाइकेजका ' नोट्सऑन एनसिवार इण्डिया; ' नाइटन कृत ' हिस्ट्रीऑफ सिलोन ' पृष्ठ ७१ की पाद टिप्पणी; श्रीबीलका ' बुद्धिष्टरेकार्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड ' भाग, २, पृष्ठ ८; तुलना करो ' बुद्ध मीमांसा ' प्रथम संस्करण, पृष्ठ २५३

९ देखो— न्यूमैनका Die Raden Gotama Buddha's etc; नरीमैनका Preface to Tiel's Religion of the Iranian people, ओल्काटका ' Catachism ' पं. चुन्नीलाल शास्त्री बरेलीकृत ' बुद्धास्तिकता विचार ' तुलना करो— ' बुद्ध-मीमांसा ' पृष्ठ २५७ की पाद टिप्पणी।

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विषय पर विचार करनेके लिए 'सूखा' शब्द बडे महत्वका है। सूकरका सूखा मांस कोई वस्तु ही नहीं है' पर गोबरछत्ता (छत्रक) जो वर्षा ऋतुमें उत्पन्न होता है। वर्ष भरतक काम में लानेके लिए सुखा कर रख लिया जाता है। भगवान् तथागतकी मृत्यु बसन्त ऋतुमें हुई थी। इस ऋतुमें सूखा ही गोबरछत्ता प्राप्त होसकता था। अतः यह स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु सूखे गोबरछत्तेके विषाक्त प्रभावसे हुई; और उनकी मृत्युके लक्षण भी सचमुच वे ही थे जो गोबरछत्तेके विषके कारण होनेवाली मृत्युमें होते हैं १०

बुद्धघोषाचार्यजीकी जोटीका है— 'इस टीकामें सूकर-मद्दव शब्दका मुख्य अर्थ सूअरका मांस ही किया गया है। लेकिन टीकाकार बुद्धघोषको इस अर्थके सम्बन्धमें कुछ शङ्का थी। बात यह है कि उनदिनों उक्त शब्दके दो अर्थ और भी प्रचलित थे। इसके सिवा 'उदान अट्ठकथा' में भी दो भिन्न अर्थ दिए हुए हैं— 'केचिपन सूकरमद्दवं तिन सूकर-मसं, सूकरेहिमद्दितवंसककीरो ति वदन्ति अञ्जे सूकरेहि मद्दितपदेसे जात अहिच्छत्रकं ति।' अर्थात् कुछ लोगोंका कहना है कि सूकरमद्दवका अर्थ सूअरका मांस नहीं है। वह तो बासका ऐसा कोमल अंकुर है, जिसे सूअरने रौंद डाला हो। औरोंकी रायमें सूअरोंकी रौंदी हुई जगहमें उपजा हुआ कुकुरमुत्ता उक्त वस्तु (उक्त दोनों वस्तुओंकी कहीं कहीं तरकारी बनाई जाती है।)' ११

श्री नेहपालसिंहजी, डिप्टी डाइरेक्टर शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश लिखते हैं— 'सूकर माद्दव साधारण कुकुर-मुत्ताके अर्थमें समझना चाहिए— इसका बडा सुन्दर शाक बनता है। पर वह 'कुत्तेका मूत्र होता है' बम्मीन्यायके अनुसार कोई कहने लगे तो कितनी बेढंगी बात होगी। कुकुरमुत्ता है भी बडे डरकी चीज। कोई कोई ही खानेमें जाता है। कुछ उग्र विष होते हैं। कभी कभी परिवारके परिवार खाकर समाप्त हो जाते हैं ... जो अनजान हैं वह पहचानमें भूलकर बैठते हैं। चुन्दने सम्भव है ऐसी ही भूल की हो।' १२

श्री बचीराम आर्य, रामगढ, नैनीताल— 'शूकर-मादवशाक नहीं कन्द ही हो सकता है। वराही कन्दको कुमाऊँमें गेठी कहते हैं। यह दो प्रकारका होता है एक घरेलू मीठा, दूसरा जंगली कडवा। बाराह या सुअर इसको प्रिय समझते हैं। इस कन्द पर छोटे शूकरके समान बाल होते हैं। गेठीके अतिरिक्त एक और कन्द होता है। यह चेपदार मधुर और गरिष्ठ होता है। यह अतिसार उत्पादक है। गोरखपुर, देवरियाकी तराईमें ही महात्मा बुद्धका निर्वाण हुआ था। तराईकी इस उपजका तब भी प्रयोग होता ही होगा।' १३

श्री जगन्नारायण शर्मा वैद्य, बतरौली, देवरिया— 'आयुर्वेद शास्त्रमें एक कन्द होता है जो बल्य, वृष्य एवं रसायन होता है जिसे लोकमें वराही कन्द कहते हैं। आयु-र्वेदमें इसके वाराही कन्द शूकरकन्द शूकरी आदि नाम है।' १४

श्री राकहिल (Rockhill) ने बुद्धकी जीवनी तिब्बती ग्रन्थोंके आधारपर लिखी है उसमें सुअरके मांसका उल्लेख नहीं है। स्वादुभोजनका ही वर्णन है। उन्होंने यह टिप्पणी दी हैं—

" It is Curious that the text contains no mention of the fork which is said to have caused inflamation the Cause of Buddha's death. " 15

---

१० गोबरछत्तेके विषाक्त प्रभावके लिए देखो डॉ० लॉरेन्सकी 'Health and longevity through rational diet' पुस्तक, पृष्ठ २४१-२४६; तुलना करो 'बुद्ध-मीमांसा' पृष्ठ २५५ की पाद-टिप्पणी; आचार्य रामदेवजी कृत 'भारतवर्षका इतिहास' तृतीय खण्ड, पृष्ठ ८६-८७ की पाद टिप्पणी।

११ देखो मासिक पत्रिका 'विशाल भारत' कलकत्ता, भाग ३५, मई १९४५ ई., अङ्क ५, पृष्ठ १९३ कॉलम १।

१२ पं. गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय एम. ए. कृत 'जीवन-चक्र' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४७७

१३ वही, पृष्ठ ४७७-४७८

१४ वही पृष्ठ ४७८

१५ वही पृष्ठ ४७८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात्— 'यह अपूर्व है कि पाठमें सूअरके मांसका वर्णन नहीं है जो बुद्धकी मृत्युका कारण उसकी ज्वालाके कारण होना कहा जाता है।'

श्री रीज डेविस (Rhys Davids dialogues of Buddha:- Sukker Maddava- see the note in my translation of Milinda (1890); VOL. I, P. 244, Dr. Hoey informs me that the peasautry in these districts are still very fond of a loullouons root, a sort of Tuffle found in the jungle aud called Sakarkand; Mr. K. E. Neumawn in his translation of the Majhim (1896) has Collected several similar instances of tuffle-like roots or edible plants having such names. " 16

अर्थात्— 'रीज डेविसने बुद्धके वार्तालाप पर जो पुस्तक लिखी है उसमें 'सूकरमद्दव' मिलिन्द (१८९०) जिल्द १, पृष्ठ २७४ के अनुवादमें एक टिप्पणी दी है। डॉ. होने उनको लिखा कि इन प्रान्तोंमें एक कन्द होता है जिसे शक्करकन्द कहते हैं। श्री के. ई. न्यूमैनने अपने मज्जिम (१८९६) के अनुवादमें ऐसे कई कन्दोंका उल्लेख किया है।'

अन्य विद्वानोंके स्पष्ट मत.

आचार्यरामदेवजी गुरुकुलकाङ्गरी विश्वविद्यालय, हरिद्वार लिखते हैं— 'मूल पालीमें खुम्बके लिए 'सूकरमादव शब्द आया है। अनेक विद्वानोंने इस शब्दका अर्थ खुम्ब ही किया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक रॉकहिल भी हमारे इसी मतका समर्थन करते हैं। अपने 'Life of Buddha' नामक ग्रन्थके १३३ पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है कि मूलपाली ग्रन्थोंमें सूअरके मांसका कहीं वर्णन नहीं मिलता। रीज डेविड्सने भी इसी मतका समर्थन किया है। १७

पं. गङ्गा प्रसादजी उपाध्याय एम. ए'— '... महात्माबुद्धके सुअरके मांस खानेकी सम्भावना बहुत कम है। प्रथम तो विदेशी और विशेषकर यूरोपके विद्वान् यह नहीं जानते कि भारतवर्षमें सुअरके मांसको कैसा समझते अन्य देशोंमें मांस खाने या किसी पशु पक्षीको मारनेमें किसीको संकोच नहीं होता। भारतमें होता है। फिर सुअरका मांस तो मेहतर और पासियोंके अतिरिक्त कोई खाता ही नहीं। चुन्द ऐसी जातिका व्यक्ति न था। दूसरी बात यह कि भारत वर्ष तथा अन्य देशोंमें भी कई वनस्पतियों नाम पशुओंके अंगों पर हैं। इससे केवल धातुओंके अर्थोंसे कोरे व्याकरण जाननेवालेको भ्रान्ति होजाति है।...... भारतवर्षसे जब बौद्धधर्म अन्य देशोंमें गये तो इसमें बहुतसे परिवर्तन और विकार आ गए। पुरानी परिपाटीके विस्मृत हो जाने पर लोगोंने अटकलसे अर्थ लगाए होंगे। और विशेष कर विदेशी भाष्यकारोंने। 'सुअरके मांस' का विचार तो बुद्धघोषकी कल्पना प्रतीत होती है जिन्होंने महापरि निब्बान सुत्रकी सुमंगल विलासिनी टीका लिखी है। यह बुद्धजीके निर्वाणके ९३५ वर्ष पीछे सिंहल देशमें गए। उन्होंने वहां त्रिपिटक ग्रन्थके उत्त कथा समूहका पालीभाषामें अनुवाद किया। यह अनुराधपुरके महाविहारमें रहते थे। उनके समय 'सूकरमद्दव' के विषममें वहांके लोगोंके कई मत थे। एक मत था।

'नाति तरुण नातिवृद्ध पवत्त मंस' दूसरा 'पंचगोरस से बना हुआ पायस विशेष'। तीसरा 'एक प्रकारका रसायन। किसी किसीने इसको एक प्रकारका पका चावल बताया है। क्योंकि इसके लिए 'मत्त' (भात) शब्दका प्रयोग हुआ है।'...... १८

गुरुकुलकाँगडी विश्वविद्यालयके प्रतिष्ठित स्नातक, विद्वद्वरेण्य पं. धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड 'सम्पादक 'गुरुकुलपत्रिका' हरिद्वार लिखते हैं—

"सूकर मद्दवम् (Sukar Maddavam) which was prepared by his devotee chunda for him and which, unfotunately caused dysentery and ended Mahatma Buddha's noble life. It is remarkable that neither in the Tibetan nor any of

---

१६ वही पृष्ठ ४७८

१७ 'भारतवर्षका इतिहास' तृतीयखण्ड, बौद्धकालि, पृष्ट ८६ की पाद टिप्पणी।

१८ 'जीवनचक्र' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४७९,४८०,४८१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

the Chinese accounts of the death of the Buddha is there any mention of pork at the last breakfast. Nor is it mentioned in any of the Mahayanist books, nor in the acccount of chuda's feast given in the Sarvata Vinaya... ..." 19

अर्थात्— 'सूकरमद्दव उनके भक्त चुन्द द्वारा उनके लिए तैयार किया गया था और असौभाग्यवश अतिसारका कारण बना और महात्मा बुद्धके श्रेष्ठ जीवनको अन्त किया। यह विचारने योग्य है कि न तो तिब्बतियों और न चीनियोंमें बुद्धकी मृत्युका कारण उनके अन्तिम कलेवामें सुअरके मांसका कोई वर्णन नहीं है। न महायानियोंके किसी भी पुस्तकमें वर्णन है। न 'सरवत विनय' में चुन्दके दिए भोजका कारण है।' ...

डॉ. हो (Dr. Hoey) who was a civilian officer of gorakhpur, holds that at Pava Buddha ate at the house of Chunda Sukara (not hog's flesh but Sukara Kanda or hog's root) which aggravated the illness that terminated his life. An an article taken by those keeping a fast, Sukar Kand is taken boild. so this corresponds very nearly to Sukar Maddavam, the soft pulp of the Sukar Kand. It has got a sweet taste and has got thread like things with in their pulp when boiled, and these cause a griping pain in weak stomachs. It possesses many of the names of the boar, such as grishti, Sukari, Varahi and Varaha Kanda. This article of diet is spoken of in bad terms by medical authorities, it is always difficult of digestion, and some varieties of it are posisonons and cften Canse death with symptoms of dysentary." 20

अर्थात्— 'गोरखपुरके नागरिक ऑफिसर डॉ० हो विश्वास करते हैं कि पावामें बुद्धने चुन्दके गृहमें सूकर (सुअरका मांस नहीं वरन् सूकर कंद अथवा सूकरकी जड़) खाया जो बीमारीको बढाया और उनके जीवनको समाप्त किया। व्रत सूकरकंदको लेकर उन लोगोंने उबाला। सूकर कंदका मुलायम गूदा सूकरमद्दवके बहुत ही अनुरूप होता है। इसका स्वाद मीठा होता है और उबालनेपर उसके गूदेमें तागाके समान वस्तु होता है, और यह निर्बल पाकस्थलीमें पेचिशकी पीडाका कारण होता है। यह सूअरके बहुत नामोंको रखता है, यथा ग्रिष्टी, सूकरी, वाराही और वाराहकंद। औषधीय अधिकारियोंके द्वारा आहारके सामानमें खराब शब्दोंमें कहा जाता है, यह पचनेमें सदैव कठिन होता है, और इसके कुछ भेद विषाक्त होते हैं और प्रायः पेचिशके लक्षणोंके साथ मृत्युका कारण होता है।'

इन प्रमाणोंके आधारपर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्धदेव (तथागत) पर मांसाहारका मिथ्या दोषारोपण किया गया है।

भगवान् बुद्धदेवने जीवनपर्यंन्त मांसाहारका विरोध किया। यथा—

'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥'

[१२९ धम्मपद, दण्डवग्गो १]

टिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित एम. ए, कृत हिन्दीटीका—

'दण्डसे सभी डरते हैं, मृत्युसे सभी भय खाते हैं, अपने समान (इन बातोंको) जानकर न (किसीको) मारे, न मारनेकी प्रेरणा करे।' २१

'सब्बेतसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं।
उत्तानं उपमं कत्वान हनेय्य न घातये ॥'

[१३० धम्मपद, दण्डवग्गो २]

अर्थात्— 'सभी दण्डसे डरते हैं, सबको जीवन प्रिय है, (इन बातोंको) अपने समान जानकर न (किसीको) मारे और न मारनेकी प्रेरणा करे।' २२

---

19 "Mahatma Buddha an Arya reformer was he an atheist? " pp. 130 [Published by the author, Ananda Kutir Jwalapur, up. in November 1957.]

२० वही पृष्ठ १३१

२१ 'धम्मपद' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ९४ (मास्टर खेलाडीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत बुकडिपो; कचौड़ीगली, वाराणसी ! द्वाराप्रकाशित)

२२ वही, पृष्ठ १५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पाणं न हाने न च घातयेय्य, न चानु जञ्ञा हननं परेसं। सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसन्ति लोके॥'

[सुत्तनिपात्र, धार्मिक सूत्र १९]

भिक्षु धर्मरत्नजी कृत टीका— 'संसारके स्थावर और जंगम सब प्राणियोंके प्रति हिंसा त्याग, न तो प्राणीका वध करे, न करावे और न करनेकी दूसरोंको अनुमति ही दे।' २३

'एकजं वा द्विजं वापि, योऽध पाणं विहिंसति। यस्स पाणे दया नत्थि, तं जञ्ञा वसलो इति॥

[वसल सूत्र] २४

अर्थात्— जो अण्डा, पक्षी अथवा जानवरोंको मारता है और जीवित प्राणियोंके प्रति दयालु नहीं है, उसे चण्डाल के तुल्य जानना चाहिए।'

'न तेन अरियो होति ये पाणानि हिंसति। अहिंसा सब्ब पाणानं अरियोति पवुच्चति॥'

[२७० धम्मपद, धम्मट्ठवग्गो]

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित एम. ए.— 'प्राणियोंकी हिंसा करनेसे (कोई) आर्य नहीं होता, सभी प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे आर्य कहा जाता है।' २५

'लोभार्थं हन्यते प्राणी, मांसार्थं दीयते धनम्।
उभौ तौ पापकर्माणौ, पच्येते रौरवादिषु॥
वक्ष्यन्त्यनागते काले, मांसादा मोहवादिनः।
कल्पिकं निरवद्यं च, मांसं बुद्धानुवर्णितम्॥
त्रिकोटिशुद्धं मांसं वै, अकल्पित मयाचितम्।
अचोदितं च नैवास्ति, तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥'

[लङ्कावतार सूत्र अ. ८, मांसभक्षण परिवर्त]

अर्थ— 'जो व्यक्ति लोभवश प्राणीको मारता है, या मांस क्रय करनेके लिए धन देता है, ये दोनों ही पापी हैं और रौरव नरककी प्रचण्ड अग्निमें पकते हैं। आनेवाले समयमें कुछ अज्ञानी लोग यह कहेंगे कि महात्मा बुद्धने भी ऐसा मांस खानेकी अनुमति दी है जिसको न देखा जा सके, न सुना जा सके और न कल्पनाकी जा सके। परन्तु ऐसे मांसकी प्राप्ति असम्भव है, अतः मांस निषिद्ध है।

'योऽतिक्रम्य मुनेर्वाक्यं, मांसं भक्षति दुर्मतिः।
लोकद्वयविनाशार्थं, दीक्षितः शाक्य शासने॥'

[लङ्कावतार सूत्र]

अर्थ— 'शाक्यशासनमें दीक्षित होकर भी जो दुर्बुद्धि-मुनि (बुद्ध) के वचनका उल्लंघन करके मांस खाता है, वह अपने इस लोक और परलोक दोनोंका नाश करता है।'

'अनुज्ञातवानस्मि स्वयं वा परिभुक्तवानिति नेदं स्थानं विद्यते। नहि आर्यश्रावकाः प्राकृतमनुष्याहार-माहरन्ति कुत एवं मांस रुधिराहारमकल्प्यम्। तथागता धर्माहार स्थितयोन सर्वामिषाहारस्थि-तयः। अकल्प्यं मांसभोजनम्। सर्वसत्त्वैकपुत्रसंज्ञी कथमिव स्वपुत्रमांसमनुज्ञास्यामि परिभोक्तुम्।'

(लङ्कावतार सूत्र, अ० ८)

अर्थ— 'यह सर्वथा मिथ्या है कि मैंने कभी मांस खाया है या दूसरोंको मांस भक्षणकी अनुमति दी है। आर्य गृहस्थ तो साधारण मनुष्योंके खानेकी सब चीजोंको भी नहीं खाते, तो फिर मांस और रुधिर खानेकी तो कल्पना भी नहीं करनी चाहिए। बुद्ध लोग धर्मानुमोदित भोजन करके जीवित रहते हैं। मांस भोजन नहीं करते। मांस भोजन सर्वथा निषिद्ध है। मैं जो सब प्राणियोंको अपना पुत्र कहकर पुकारता हूँ, कैसे इस बातकी अनुमति दे सकता हूँ कि लोग मेरे पुत्रोंका मांस खायें? अर्थात् किसी भी प्राणीके मांस खानेकी अनुमति देना ऐसा अनर्थ है, मानों मैं अपने ही पुत्रका मांस खानेका आदेश दे रहा हूँ।

जब तथागत स्वयं कह रहे हैं कि मैंने मांस कभी न खाया और न किसीको खानेकी अनुमति देता हूँ। अतः ऐसी परिस्थितिमें उनपर मांसाहारका आक्षेप नितान्त निर्मूल हो जाता है।

---

२३ देखो पं. धर्मदेवजी 'विद्यामार्तण्ड' कृत "Mhatma Buddha an Arya reformer was he an atheist?" pp. 129.

२४ वही पृष्ठ १२६

२५ 'धम्मपद' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १८५ [मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगली, वाराणसी १ द्वारा प्रकाशित]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदोंका रचना--काल

(लेखक- श्री अरुणकुमार शर्मा, हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी १ [उ. प्र.])

वैदिक साहित्य

भारतीय दृष्टिमें श्रद्धा रखनेवाले विद्वानोंके सामने तो वेदोंके काल निर्णयका प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि उनकी दृष्टिमें वेद अनादि हैं- नित्य हैं- कालसे अनवच्छिन्न है। वैदिक ऋषिजन वेदोंके मन्त्रोंके द्रष्टामात्र माने गये हैं। रचयिता नहीं। परन्तु पाश्चात्य विद्वानोंके अनुयायी भारतीय विद्वानोंकी दृष्टिमें वेदोंके आविर्भावका प्रश्न-ऐतिहासिक पद्धतिसे हल करनेकी वस्तु है। अभी हालमें मैंने एक ' वैदिक साहित्य ' नामक ग्रन्थका सम्पादन करनेका प्रयास किया है। वस्तुतः प्रस्तुत लेख उसी ग्रन्थका एक अंश मात्र है। अस्तु

सर्व प्रथम जानने योग्य बात यह है कि सर्वप्राचीन ऋग्वेदकी रचना- डा० मैक्समूलरके विचारके अनुसार— १२०० विक्रम पूर्वमें सम्पन्न हुयी। विक्रमसे लगभग ५०० वर्ष पूर्व भगवान बुद्धने धराधाम पर अवतार लिया। बुद्ध धर्मका उदय समस्त वैदिक वाङ्मयके अस्तित्वको अंगीकार करता है। ब्राह्मणों तथा श्रौत सूत्रोंमें विस्तृत रूपसे वर्णित यज्ञानुष्ठान बुद्धकी तीखी आलोचनाओंका प्रधान विषय था, तथा उपनिषदोंमें विवेचित अनेक अध्यात्म तत्व उसके लिये सर्वथा ग्राह्य था। अतः इसी बुद्ध धर्मके उदयकी आधार शिला पर वैदिक कालके आरम्भका निर्णय सर्वतो भावेन अवलम्बित है।

समग्र वैदिक युगको चार भागोंमें बाटां गया है! छन्दःकाल, मंत्रकाल, ब्राह्मणकाल, तथा सूत्रकाल। और प्रत्येक युगकी विचार धाराके उदय तथा ग्रन्थ निर्माणके लिये २०० वर्षोंका समय लगा था, अतः बुद्धके प्रथम होनेसे सूत्रकालका प्रारम्भ ६०० विक्रम पूर्व माना गया है। इस कालमें श्रौत सूत्रों— कात्यायन आपस्तम्ब आदि— तथा गृह्य सूत्रोंकी निर्मिति प्रधान रूपेण अंगीकृत की जाती है। इससे पूर्वका ब्राह्मणकाल जिसमें भिन्न भिन्न ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचना यज्ञानुष्ठानका विपुलीकरण, उपनिषदोंके आध्यात्मिक सिद्धान्तोंका विवेचन आदि सम्पन्न हुआ। इसके विकासके लिये ८०० वि. पू. ६०० वि. पू. तक दो सौ सालोंका काल माना गया है।

इससे पूर्व वर्ती मंत्र युगके लिये जिसमें मन्त्रोंका याग-विधानकी दृष्टिसे चार विभिन्न संहिताओंमें संकलन किया गया। १००० वि. पू. से लेकर ८०० वि. पू. का समय स्वीकार किया गया है। इससे भी पूर्ववर्ती कल्पना तथा रचनाकी दृष्टिसे नितान्त श्लाघनीय युग भी-छन्दःकाल-था जिसमें ऋषियोंने अपनी नवोन्मेष शालिनी प्रतिभाके बल पर अर्थ- गौरवसे भरें हुये मन्त्रोंकी रचना की थी। यही मौलिकताका युग था। कमनीय कल्पनाओंका यही काल था। जिसके लिये १२००-१००० का काल विभाग माना गया है। ऋग्वेदका यही काल है। अतः बुद्धके जन्मसे पीछे, हटते हटते हम ऋग्वेदके काल तक सुगमतासे पहुंच जाते हैं। इस मतके अनुसार ऋग्वेदकी रचना आजसे लगभग ३२०० वर्ष पूर्व की गयी थी। अस्तु हमारे इस खोजके आधार पर लिखे गये ग्रन्थ,- जिसका एक अंश आपके सामने प्रस्तुत है.. इनके प्रमाणोंको समझनेके लिये ज्योतिष संबंधी सामान्य तथ्योंसे परिचय पाना नितान्त आवश्यक है।

प्राचीन वर्षारम्भ

वर्षके छै ऋतुओंका आविर्भाव सूर्यके संक्रमण पर निर्भर रहता है! प्राचीन कालसे आज तक ऋतुयें पीछे हटती जा रहीं हैं। प्राचीन कालमें जिसे नक्षत्रके साथ जिस ऋतुका उदय होता था आज वही ऋतु उस नक्षत्रसे पूर्ववर्ती नक्षत्रके समय आकर उपस्थित होती है। प्राचीनकालमें वसन्तसे वर्षका प्रारम्भ माना जाता था। ' ऋतूनां कुसुमाकरः '— गीता। आजकल वसन्त सम्पात मीनकी संक्रान्तिसे आरम्भ होता है और यह संक्रान्ति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रके चतुर्थ चरणसे आरम्भ होती है, किन्तु यह स्थिति धीरे धीरे नक्षत्रोंके एकके बाद एकके पीछे हटनेसे हुयी है। किसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समय वसन्त-सम्पात, उत्तरा भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी मृगशिरा आदि नक्षत्रोंमें था—जहांसे वह क्रमशः पीछे हटता हुआ—आज वर्तमान स्थिति में पहुंच गया है।

नक्षत्रोंके पीछे होनेसे ऋतु परिवर्तन तब लक्ष्यमें भली-भाँति आने लगता है जब वह एक मास पीछे हट जाता है। सूर्यसे संक्रमण वृत्तको २७ नक्षत्रोंमें भारतीय ज्योतिषियोंने विभक्त कर रखा है: पूरा संक्रमण वृत्त ३६० अंशोंका है। अतः प्रत्येक नक्षत्र (३६०÷२७) = १३$\frac{१}{२}$ अंशोंका एक चाप बनाता है। संक्रमण विन्दुको एक अंश पीछे हटनेमें ७२ वर्ष लगते हैं। अतः पूरे एक नक्षत्र पीछे हटनेके वास्ते उसे (७२×१३$\frac{१}{२}$) ९७१ वर्षोंका महान् काल लगता है। आज कल वसंत सम्पात पूर्वा भाद्रपदके चतुर्थ चरणमें पडता है। यानी जब वह कृत्तिका नक्षत्र में पडता था, तबसे लेकर आज तक वह लगभग साढेचार नक्षत्र पीछे हट आया है। अतएव ज्योतिष गणनाके अनुसार कृत्तिका नक्षत्रमें वसन्त-सम्पातका काल आजसे लगभग (९७२× ४$\frac{१}{२}$ = ४३७४) साढे चार हजार वर्ष पहले था अर्थात् २५०० वि. पू. के समय यह ज्योतिषकी घटना मोटे तौर पर सम्भवतः घटी होगी।

अन्य विवरण

शतपथ ब्राह्मणमें कृत्तिकाओंके ठीक पूर्वीय विन्दु पर उदय लेनेका वर्णन है जहांसे वे तनिक भी च्युत नहीं होतीं (श. प. ब्रा. २।१।२) आजकल वे पूर्वीय विन्दुसे कुछ उत्तर-की ओर हट कर उदय लेती हैं। ऐसी महास्थिति ३००० वि. पू. हुई होगी, जो शतपथ ब्राह्मणका निर्माण काल माना जा सकता है। तैत्तरीय संहितामें कृत्तिका नक्षत्र तथा अन्य नक्षत्रोंका वर्णन है, जो निश्चय ही शतपथसे प्राचीन है। ऋग्वेद तो तैत्तरीयसे भी पुराना है। अब यदि प्रत्येकके लिये २५० वर्षका अन्तर मान लें, तो ऋग्वेदका समय ३५०० वि. पू. से इधरका कभी नहीं हो सकता। अतः ऋग्वेद आजसे लगभग ५५०० वर्ष नियमतः पुराना सिद्ध हो जाता है। ●

लेखकका खोज विवरण

मेरी विवेचनाके अनुसार यह समय और भी पूर्ववर्ती होना चाहिए। ऋग्वेदका गाढ अनुशीलन कर मैंने मृग-नक्षत्रमें वसन्तसम्पात होनेके अनेक निर्देश एकत्र किये हैं। तैत्तिरीय संहिताका मत है ' फाल्गुन पूर्णिमा वर्षका मुख है '। यदि पूर्ण चन्द्रमा फाल्गुनी नक्षत्रमें था तो सूर्य अवश्य-मेव मृगशिरामें रहेगा जब वसन्त-सम्पात भी होगा। ऋग्वेदमें मृगशिराको आकार-स्थितिका निर्देश अनेक मन्त्रों तथा आख्यानोंमें पूर्ण तथा अभिव्यक्त किया है। जिसकी एक झलक कालिदासने अभिज्ञान शाकुन्तलके आरम्भमें ही ' मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ' में उपमा द्वारा दे दिया है।

मृगशिरामें वसन्त सम्पातका समय कृत्तिकावाले समयसे लगभग २००० वर्ष पूर्व अवश्य होगा। क्योंकि मृगशिरासे कृत्तिका तक पीछे हटनेमें उसे दो नक्षत्रोंको पार करना होगा (९७२×२=१९४४) अतः जिन मंत्रोंमें मृगशिराके वसन्त सम्पातका उल्लेख किया गया है। उनका समय मोटे तौर पर (२५००+१९४४) ४५०० वि. पू. होना माना है। वसन्त सम्पातके मृगशीर्षसे भी आगे पुनर्वसु नक्षत्रमें भी होनेका यथेष्ठ प्रमाण या संकेत ऋग्वेदमें मिलते हैं।

अदितिको देवमाता कहे जानेका भी यही रहस्य है। पुनर्वसु नक्षत्रका देवता अदिति है। अतः अदितिको देव जननी कहनेका रहस्य यही है कि पुनर्वसु नक्षत्रमें वसन्त सम्पात होनेसे वर्ष तथा देवयानका आरंभ इसी कालसे माना जाता था। पुनर्वसु ही उस समय नक्षत्र-मालामें आदि नक्षत्र था। पुनर्वसुमें सूर्यके संक्रमण होते ही देवताओंके पवित्र काल (उत्तरायण-देवयान) का आरम्भ होता था। यह काल दो नक्षत्र आगे हट कर होनेके कारण मृगशिरावाले समयसे लगभग २००० वर्ष अवश्य पहले होगा, अर्थात् यही अदिति युग भारतीय संस्कृतिका सबसे प्राचीन युग है+। यह युग ६०००—४००० वि. पू. तक माना जा सकता है। इस कालकी स्मृति भी आर्य-संस्कृतिमें उपलब्ध नहीं होती। न तो ग्रीक लोगोंकी

● द्रष्टव्य—शंकर बालकृष्ण दीक्षित, ' भारतीय ज्योतिःशास्त्र ' पृ. १३६ (पूना १८९६ ई.) और अरुण कुमार शर्मा, भारतीय ज्योतिःशास्त्रका इतिहास पृ. २४१ (गुजराती संस्करण)

+ दस्रो यमोऽनलो ब्रह्मा चन्द्रो रुद्रोऽदितिर्गुरुः।... क्रमान्नक्षत्रदेवताः ॥ लघुसंग्रहः श्लोक ६१-६३

Nepal Sanskrit University,,Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही सभ्यतामें, न पारसियोंके धर्म ग्रन्थोंमें इस सुदूर अतीतकी झलक दीख पडती है। इस प्रकार वैदिक कालको चार युगोंमें विभक्त किया गया है—

(१) अदितिकाल (६०००—४००० वि. पू.) इस सुदूर प्राचीन कालमें उपास्य देवताओंके नाम, गुण, तथा मुख्य चरित्रके वर्णन करनेवाले निविदो (यागसंबंधी विधिवाक्यों) की रचना कुछ गद्यमें कुछ पद्यमें की गई तथा अनुष्ठानके अवसर पर उनका प्रयोग किया जाता था।

(२) मृगशिरा काल (लगभग ४०००—२५०० वि. पू.) आर्यसभ्यताके इतिहासमें नितान्त महत्त्वशाली युग यही था। जब ऋग्वेदके अधिकांश मन्त्रोंका निर्माण किया गया। रचनाकी दृष्टिसे यह युग विशेषतः क्रियाशील था।

(३) कृत्तिकाकाल (२५००—१४०० वि. पू.) इस कालमें तैत्तरीय संहिता तथा शतपथ आदि अनेक प्राचीन ब्राह्मणोंका निर्माण सम्पन्न हुआ। 'वेदाङ्ग ज्योतिष' की रचना इस युगके अन्तिम भागमें की गयी—क्योंकि इसमें सूर्य और चंद्रमाके श्रविष्ठाके आदिमें उत्तर ओर घूम जाने का वर्णन मिलता है × और यह घटना १४०० के आसपास गणितके आधार पर अंगीकृत की गयी है।

(४) अन्तिम काल (१४९०—५०० वि. पू.) एक हजार वर्षोंके अन्दर श्रौत सूत्रों एवं गृह्य सूत्रों तथा दर्शन सूत्रोंकी रचना हुई और बौद्ध धर्मका उदय वैदिक धर्मकी प्रतिक्रियाके रूपमें इसके अन्तिम भागमें हुआ।

शिलालेखसे पुष्टि

सन् १९०७ में टर्कीके 'वोगाज-कोई' नामक स्थान पर एक शिलालेख मिला, जो हमारे इस विषयका नितान्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण माना जाता है। अस्तु, पश्चिमी एशियाके इस खण्डमें 'हित्तिति' और 'मितानी' नामकी दो प्राचीन जातियां थीं। दोनों जातियां अपने पारस्परिक कलह के निवारणके लिये आपसमें सन्धिकी— जिसके संरक्षणके रूपमें मित्र, वरुण, इंद्र, आश्विन आदि देवताओंका नाम उपलब्ध होता है। इस शिलालेखमें ये चार वैदिक देवताओंके नाम काफी महत्त्वके माने जाते हैं। ये शिलालेख १४०० वि. पू. के हैं। मितानी जाति भारतीय वैदिक आर्यों की एक शाखा थी, जो भारतसे पश्चिमी एशियामें जाकर बस गयी थी या वैदिक धर्मको माननेवाली एक आर्य जाति थी।

ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधार पर पश्चिमी एशिया और भारतका पारस्परिक सम्बन्ध सिद्ध किया जा सकता है। मित्र वरुण आदि चारों देवताओंका जिस प्रकार एक साथ निर्देश किया गया है, उससे इनके 'वैदिक देवता' होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

जैसा कि कहा गया कि वह शिला लेख १४०० वि. पू. समयका है। इसका अर्थ है कि इस समयसे बहुत पहले आर्योंने आर्यावर्तमें अपने वैदिक धर्म तथा वैदिक देवताओंकी कल्पना पूर्ण कर रखी थी। आर्योंकी कोई शाखा जाकर भारतवर्षसे जाकर पश्चिमी एशियामें बस गयी थी। अस्तु।

पश्चिमी विद्वान् इस आधार पर वेदोंका प्राचीनतम काल २०००—२५०० वि.पू. मानने लगे हैं। परन्तु वेदोंमें उल्लिखित ज्योतिष संबंधी तथ्योंकी युक्तियुक्तता तथा उसके आधार पर निर्णित काल-गणनामें अब विद्वानोंको विश्वास होने लगा है।

भूगर्भ संबंधी वैदिक तथ्य

ऋग्वेदमें भूगर्भ संबंधी अनेक ऐसी घटनाओंका वर्णन मिलता है, जिसके आधार पर ऋग्वेदका समय निरूपण किया जा सकता है। तत्कालीन युगमें सिन्धु नदीके तट पर आर्योंके यज्ञविधान विशेष रूपसे होते थे। सिन्धु नदीके संबंधमें ऋग्वेदका कथन है—

एकाचेतत् सरस्वती नदीनाम्

शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्। ऋ. ७।९५।२

एक दूसरे मन्त्रमें (३।३३।१) सरस्वती और शुतुद्रि नदियोंके गरजते हुये समुद्रमें गिरनेका उल्लेख मिलता है। आजकल जहां राजपूतानाकी मरुभूमि है वहां प्राचीन कालमें एक विशाल समुद्र था— जिसमें हिमालयसे निकल कर सरस्वती और शुतुद्रि नदियाँ गिरती थीं। तांडय ब्राह्मणमें (२५।१०।६) स्पष्ट है कि सरस्वती विनशनमें लुप्त हो कर प्लक्ष-प्रस्रवणमें पुनः आविर्भूत होती थी। ऋग्वेदसे ज्ञात होता है कि सप्त सिन्धु प्रदेशके चारोंतरफ चार समुद्रोंका अस्तित्व था। (ऋग्वेद १०।१३६।५) सप्त सिन्धुके

× 'प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सर्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा ॥ ६ ॥ ऋग्वेद ज्यो०'

इसकी मीमांसाके लिये द्रष्टव्य 'गीता रहस्य' पृ. ५४६ वैद्य 'हिस्ट्री-आफ वैदिक लिट्रेचर' भाग १ पृ. ३५-३७ तथा 'वेद रहस्य' भा. १ पृ. ६५० उपसंहार (अरुणकुमार शर्मा, हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी- १)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्व तथा पश्चिममें दो समुद्रोंके वर्तमान होनेका उल्लेख है जिनमें पश्चिम समुद्र तो आज भी वर्तमान है। परन्तु पूर्वी समुद्रका पता नहीं है। ऋग्वेदके दो मन्त्रोंमें चतुः समुद्रोंका निःसन्दिग्ध निर्देश है। प्रथम मंत्रमें—

'रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणः॥ (ऋ. ९।३३।६)

फिर दूसरे मंत्रमें—

'स्वायुधं स्ववसं सुनीथं
चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्॥ (१०।४७।२)

भी चतुःसमुद्रोंका वर्णन है। इससे स्पष्ट है, कि ऋग्वेदीय युगमें आर्य प्रदेशके चारों तरफ चार समुद्र लहरा रहे थे। इनमें पूर्वी समुद्र आजके उत्तर प्रदेश तथा बिहारमें था। दक्षिण समुद्र राजपूतानाकी मरुभूमिमें था। पश्चिमी समुद्र आज भी वर्तमान है। उत्तरी समुद्रकी स्थिति उत्तर दिशामें थी, जिसका सम्बन्ध उत्तरमें आर्कटिक महासागरसे था। जो आजकलके 'कृष्णसागर' 'काश्यप सागर' 'अराल सागर' तथा 'बल्गास हृद' इसीके अवशिष्ट रूपमें माने जाते हैं।

उन दिनों समस्त गंगा प्रदेश, हिमालयकी पाद भूमि तथा आसामका विस्तृत पर्वतीय प्रदेश समुद्रके गर्भमें थे। कालान्तरमें गंगा नदी हिमालयसे निकल कर सामान्य नदीके रूपमें बहती हुई हरिद्वारके समीप ही पूर्व समुद्रमें गिरने लगी। यही कारण है कि ऋग्वेदके प्रसिद्ध नदी सूक्त (१०।७५) में गंगाका बहुत ही संक्षिप्त परिचय मिलता है। उस समय पंजाबके दक्षिण तथा पूर्वमें समुद्र था, जिसके कारण दक्षिण भारत एक पृथक् पृथ्वी खण्ड सा दीखता था। पंजाबमें उन दिनों शीतका प्राबल्य था, इसी लिये ऋग्वेदमें वर्षका नाम 'हिमं मिलता है। (ऋ. १। ६४। १४,२।१।११; (१) और ६।१०।७; (२)) भूतत्त्वज्ञोंने सिद्ध किया है कि भूमि और जलके ये विभिन्न भाग तथा पंजाबमें शीत कालका प्राबल्य प्लीस्टोसिन कालका वा पूर्व प्लीस्टोसिन काल की बात है।

यह काल इसीसे पचास हजार वर्षसे लेकर २५ हजार वर्ष तक निर्धारित किया गया है। भूतत्त्वोंके विज्ञजनोंने यह भी स्वीकार किया है, कि इस कालके अनन्तर राजपूताने के समुद्र गर्भके ऊपर निकल आनेके साथ ही हिमालयकी नदियोंके द्वारा आहृत मृत्तिकासे गंगा प्रदेशकी समतल भूमि बन गयी। पंजाबकी जल वायुमें उष्णता आ गयी।

पंजाबके आस-पाससे राजपूताना समुद्र तथा हिम-संहितिओंके तिरोहित होनेसे तथा वृष्टिके अभावके कारण ही सरस्वतीका पुण्य प्रवाह सूक्ष्म रूप धारण करता हुआ राजपूतानेकी बालुका राशिमें विलीन हो गया (३)। इन भूगर्भ घटनाओंके आधार पर ऋग्वेदकी रचना तथा तत्कालीन सभ्यतामें आविर्भावका समय कमसे कम इसीसे पचीस हजार वर्ष पूर्व मानना चाहिए। (डा. अविनाश चन्द्र दासका 'ऋग्वेदिक इण्डिया' नामक अंग्रेजी ग्रंन्थ, कलकत्ता १९२२)।

उपसंहार

ऋग्वेदके निर्माण-कालके विषयमें ये ही प्रधान मत हैं। इतना तो निश्चित प्रायः है, कि वेदोंका समय उतना अर्वाचीन नहीं है जितना पहले माना जाता था। और पश्चिमी विद्वान् लोग भी अब उनका समय आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व मानने लगे हैं। परन्तु वेदोंका काल आजसे दस हजार वर्ष पूर्व माननेमें दोनों पक्षोंका सामञ्जस्य पर्याप्त रूपेण किया जा सकता है। और वस्तुतः यही वेदके निर्माणका काल है। अस्तु।

मैं इस समय वेदोंके विभिन्न अंगों पर खोज तथा शोध कार्य कर रहा हूं, मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही अपने पाठकों के समक्ष खोज पूर्ण वैदिकसाहित्य प्रस्तुत करूंगा। अन्तमें मैं अपने पाठकोंसे निवेदन करता हूं कि जिन पुस्तकोंका उल्लेख मैं अपने लेखोंमें करता हूं उनका द्वितीय संस्करण होने जा रहा है। प्रायः प्रथम संस्करण समाप्त हैं। हमारी प्रत्येक पुस्तकोंकी प्रकाशन व्यवस्था 'शर्मा पब्लिकेशन्स' के अन्तर्गत है। कोई भी पुस्तक व्यापारकी दृष्टिसे प्रकाशित नहीं की जाती है। किन्तु पाठकोंके अनुरोध पर उसे लागत मूल्य पर प्रेषित करनेकी व्यवस्था है।

---

(१) 'त्वमिडा शतहिमासि' 'दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती।

(२) वि द्वेषांसि नुहि वर्धयेडां मदेम 'शतहिमा' सुवीराः।

(३) 'वैदिक धर्म' के आगामी अंकमें प्रकाशित होनेवाला 'वेदका संहिता साहित्य' लेख देखें। (ले० अरुण कुमार शर्मा)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदकी व्यापकता पर कुठाराघात

(लेखक— श्री नाथूलाल वानप्रस्थी, वैदिक धर्म तथा संस्कृत विशारद, लश्कर, म. प्र.)

अगस्त सन् १९५९ के 'वैदिक धर्म' में श्री भवानी लालजी भारतीय एम. ए. सिद्धान्त वाचस्पति जोधपुरका एक लेख 'क्या वेदमें बहाई धर्मका वर्णन है' छपा है।

इस लेखमें लेखक महोदयने अप्रैल मासके वैदिक धर्ममें प्रकाशित मेरे एक लेख- 'वेदमें बाब शब्दकी प्रशंसा' का खण्डन करनेके आवेशमें वेदकी व्यापकतापर अत्यंत कुठाराघात किया है।

१- लेखक महोदयने मेरे लेखके आशयको यह समझा है कि मैंने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि 'वेदमें बहाई धर्मके प्रवर्तकका उल्लेख 'बाब' शब्दके रूपमें हुआ है' जो नितान्त मिथ्या है। क्योंकि यह बात कोई भी इतिहासकार स्वीकार नहीं करेगा कि 'वर्तमान कालके किसी भी धर्मका उल्लेख प्राचीन कालकी धर्म पुस्तकमें रूढी वाचक नामसे हो सकता है।' परन्तु धर्म प्रवर्तकके नामोंका उल्लेख यौगिक रूपमें होनेको सब स्वीकार करेंगे। जैसे- राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध आदि यौगिक रूपसे वेदोंमें आये हैं।

इसी प्रकार महात्मा 'बाब' के नामका शब्द भी वेदमें आया है। और जिस प्रकार राम कृष्ण शब्दोंके अर्थ भगवान् राम व कृष्णमें घटित होते हैं, इसी प्रकार 'बाब' शब्दका अर्थ भी घटित होता है। इसमें वेदकी व्यापकताका महत्व बढता है न कि घटता है। इसी हेतुसे मनुस्मृतिमें आदेश है- कि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' अर्थात् वेद सब धर्मोंका आदि मूल है। अतः मनुस्मृतिके इस आदेशसे यह नहीं सिद्ध होता कि वेदमें सब धर्मोंका उल्लेख है। बल्कि यही सिद्ध होता है कि वेदके शाश्वत धर्मकी बातोंको लेकर ही सम्पूर्ण धर्म निर्माण हुए हैं। इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि लेखक महोदयने मेरे लेखके आशयको समझनेमें बडी भारी भूल की है। जो वेदकी व्यापकताके महत्व पर कुठाराघात करती है।

२- लेखक महोदयने लिखा है कि 'वेदमें किसी शब्द विशेषको देखकर उसको कोई विशिष्ट व्यक्ति परक अर्थ करना वेदार्थकी परिक्रियासे अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित करना है।' यह कथन भी भ्रम पूर्ण और वेदकी व्यापकता के महत्वको नष्ट करनेवाला है। क्योंकि वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर महोदय संपादक 'वैदिक धर्म' ने 'वैदिक राज्य शासनमें आरोग्य मंत्रीके अनेक कार्य वेद मंत्रोंके द्वारा विशिष्ट परक अर्थ किये हैं। जो वेदोंकी महत्वताके प्रदर्शक हैं, न कि पतनके। यदि कोई व्यक्ति वेदके शब्दोंपर अपना व्यक्तिगत नाम रखते हैं तो इसमें वेदके शब्दोंकी महत्वता प्रकट होती है, न कि पतन। इसी प्रकारके 'बाब' शब्दकी प्रशंसा किसी वर्तमान कालके महान आत्मामें घटित करना भी वेदकी व्यापकता और महत्वताका द्योतक है न कि पतनका। इससे सिद्ध है कि लेखक महोदयका यह कथन वेदकी व्यापकताके महत्व पर कुठाराघात करनेवाला है।

३- लेखक महोदयने लिखा है कि 'देवी' शब्दका अर्थ धार्मिक सम्प्रदाय किया है, जो सर्वथा अयुक्त व हास्यास्पद है। हम उनसे पूछना चाहते है कि 'देवी' शब्दका यह विचित्र अर्थ किस कोष और व्याकरणके अनुसार उन्होंने किया है? ' लेखक महोदयका यह कथन भी 'देवी' शब्दके व्यापक अर्थकी अनभिज्ञताका सूचक है! क्योंकि जिस प्रकार 'आर्य' शब्द एक व्यक्ति पर घटित होते हुए 'आर्य समाज' एवं 'आर्य धर्म' पर भी घटित होसकता है। इसी प्रकार 'वैदिक धर्मी' शब्द एक व्यक्ति पर घटित होते हुए एक 'धर्म' एवं 'समाज' के लिये भी घटित हो सकता है। इसी प्रकार वेदके प्रत्येक गुणवाचक 'शब्द' पर व्यक्ति, समाज एवं धर्मके नाम रखे जाते है।

इससे सिद्ध है कि जो शब्द एक व्यक्ति पर घटित होता है, वही शब्द समाज, सम्प्रदाय और धर्म पर भी घटित हो सकता है। इसी हेतुसे वेदके अर्थकी व्यापकता मानी जाती है। इतना ही नहीं बल्कि इस 'देवी' शब्दके अर्थकी व्यापकताके हेतुसे ही 'देवी-पुराण' व 'देवी-सम्प्रदाय' का भी निर्माण हुआ है। इसके अतिरिक्त 'देवी' शब्दका अर्थ किस व्याकरणके अनुसार किया है इसका स्पष्टी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करण तो उस लेखमें विस्तारपूर्वक किया जा चुका कि है 'देवी' शब्दका उत्पादक 'दिव्' धातु है जिसके अर्थ क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न कान्ति, गति ये दश बताये गये है। अतः इतने विस्तारपूर्वक व्याकरणानुसार अर्थ होते हुए भी लेखक महोदयकी दृष्टिमें नहीं आया और मुझसे पूछा जा रहा है यह कितने हास्यकी बात है। इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि वेदके 'देवी' शब्दका अर्थ धार्मिक सम्प्रदायमें घटित करनेको अयुक्त बताना वेदकी व्यापकताके महत्व पर कुठाराघात करना है।

अन्तमें आपने यह भी लिखा है कि 'देवीके इस विचित्र अर्थके समझनेमें हम असमर्थ हैं।' इस असमर्थताका कारण महर्षि दयानन्दने सत्यार्थ प्रकाशकी भूमिकामें बताया हुआ है कि 'जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्यको भी सत्य, और विरोधी मतवालेके सत्यको भी असत्य सिद्ध करनेमें प्रवृत्त होता है। इस लिये वह सत्य मतको प्राप्त नहीं होसकता।' अतः महर्षिदयानन्दके इस कथनके अनुसार केवल पक्षपातके कारण ही लेखक महोदय इस वेदके 'देवी' शब्दके अर्थकी व्यापकताको समझनेमें असमर्थ हैं। यदि पक्षपात त्याग दें तो शीघ्र समझ सकते हैं।

४– लेखक महोदयने लिखा है कि 'धर्म रक्षाके लिये ईश्वरका अवतार होना भी नाथूलालजी स्वीकार करते हैं, परन्तु यह सिद्धान्त अवैदिक होनेसे आर्योंके लिये सर्वथा अमान्य है।' इस कथनसे मालूम होता है कि लेखक महोदय 'वैदिक सिद्धान्त तथा वेदोक्त ईश्वरीय अवतार वादसे नितान्त अनभिज्ञ हैं।' क्योंकि वेदोक्त ईश्वरीय वाणी प्रकट होनेको वेदोक्त ईश्वरीय अवतार माना जाता है महर्षि दयानन्दने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें एक प्रश्नके उत्तरमें बताया है कि सृष्टिके आदिमें जिन चार पुरुषोंका अन्तःकरण शुद्ध था उन्हींके हृदयमें ईश्वरीयवाणी प्रकट हुई। 'इसी प्रकार उन्होंने सत्यार्थप्रकाशके ईश्वरावतार निषेधमें स्वीकार किया है कि 'ऐसा हो सकता है कि श्री कृष्ण धर्मात्मा थे और धर्मकी रक्षार्थ चाहते थे कि मैं जन्म लेकर श्रेष्ठोंकी रक्षा और दुष्टोंका नाश करूं तो इस प्रकारके अवतार माननेमें कोई दोष नहीं है। इसी बातको पं. गंगाप्रसादजीने 'धर्मके आदिस्रोत' नामक पुस्तकमें ऋग्वेद के वृत्रासुरकी कथाके अनुसार महापुरुषोंके हृदयमें ईश्वरीय वाणी प्रकट होकर होकर वेदोक्त धर्मका जीर्णोद्धार होना स्वीकार किया है। इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि लेखक महोदय वेदोक्त ईश्वरीय अवतार वादके ज्ञानसे नितान्त अनभिज्ञ हैं।

५– इसके पश्चात् लेखक महोदयने पौराणिक बन्धुओंको भडकाते हुए लिखा है कि– 'धर्म संस्थापन और दुष्टोंके विनाशनके लिये महा पुरुष कृष्णके जन्म लेनेकी बात तो समझमें आती है। परन्तु बहाई मतके प्रवर्तक अली मोहम्मदको ईश्वरावतार स्वीकार करना तो पौराणिक बन्धुओंके लिये भी कठिन हो जायगा।' यह कथन भी केवल जातीयताके पक्षपातके कारण नितान्त मिथ्या है। क्योंकि जिस प्रकार लेखक महोदयकी दृष्टिमें मुसलमान जातिकी भिन्नता है, इस प्रकार ईश्वरकी दृष्टिमें जातीय भिन्नता नहीं होती, वह तो जिस स्थान व उपजातिमें पाप और अत्याचारकी पराकाष्ठा देखता है उसी स्थान व जातिके पवित्रात्माके हृदयमें अपनी वाणी प्रकट कर देता है। और उसकी वाणीको पक्षपात रहित प्रत्येक व्यक्ति शीघ्र मान लेता है। जैसे गुणग्राही महर्षि दयानन्दने ईसामसीहके विजातीय होते हुए भी पादरी लालबहादुरके प्रति स्वीकार किया कि 'ईसामसीह महापुरुष अवश्य थे।' (सार्वदेशिक जीवन चरित्र पृष्ठ १६८)

इसी प्रकार पक्षपात रहित विशाल हृदय पौराणिक बन्धुओंने तो कच्छ, मच्छ, वाराह, आदि पशु योनिमें और बुद्ध जैसे नास्तिक मत प्रवर्तकमें अवतार होना माना है और अल्लोपनिषद्में मोहम्मद साहबको भी रसूल होना माना है। ऐसी परिस्थितिमें पौराणिकोंकी फिकर करना व्यर्थ है। क्योंकि इस समय भारतवर्षमें विशाल हृदयके पक्षपात रहित लाखों व्यक्ति बहाई धर्मके अनुयाई हो चुके हैं। तथा विदेशोंमें तो करोडोंकी संख्यामें अनुयाई हो चुके हैं इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि पौराणिकोंकी फिकर करना नितान्त मिथ्या है।

६– लेखक महोदयने एक ताना दिया है कि 'वानप्रस्थीजी अद्वैत विचार धाराके अनुयायी हैं, और आर्य समाजके त्रैतवादी दर्शनकी आलोचना करनेके कारण ही आपको आर्य समाजके क्षेत्रसे पृथक् किया गया था।' यह ताना देकर आपने अपना प्रच्छन्न बौद्ध मतका अनुयायी होना प्रकट कर दिया है। क्योंकि 'अद्वैतवादी–दयानन्द'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शीर्षक लेख जो 'वैदिक धर्म' अक्तूबर व नवम्बर सन् १९५३ में प्रकाशित हो चुके हैं जिनका उत्तर आजतक किसी आर्य समाजीने नहीं दिया इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि महर्षि दयानन्द 'अद्वैतवादी' थे ● किन्तु वर्तमान आर्य-समाज संकुचित एवं हानिकारक विचारधाराका होनेके कारण उसमेंसे वेद व्याख्याता पं. भीमसेनजी, महर्षि दयानन्दके अनन्य भक्त स्वामी सत्यानन्दजी, अखिलानंदजी, कर्मानन्दजी, यू. पी. प्रतिनिधि सत्ताके प्रधान फतेह सिंहजी, मंत्री लाला जगन्नाथ प्रसादजी, वेदमूर्ति पं. सातवलेकरजी, संपादक वैदिक धर्म, चतुर्वेद भाष्य कर्ता वेदमूर्ति स्वामी विद्यानन्दजी विदेह आदि अनेक विद्वान् आर्य समाजसे पृथक् हो चुके तथा होते जा रहे हैं।

वर्तमान समयके आर्य समाजका स्वरूप पं. भगवद्दत्तजीने 'ऋषि दयानंद सरस्वतीके पत्र और विज्ञापन' की भूमिकाके पृष्ठ ४५ पर लिखा है कि 'दुर्भाग्यका विषय है कि ऋषिके निधनके पश्चात् ऋषि दयानन्द सरस्वतीकी स्मृतिमें स्थापित की गई संस्थामें वेद और आर्य ग्रन्थोंके अनेक विरोधी उत्पन्न हो गये हैं। जब कोई सच्चा आर्य पुरुष इसपर आपत्ति करता है तो अनेक कथित मात्रके आर्य समाजी जो प्रच्छन्न बौद्ध हैं और जो प्रबन्धक बने बैठे हैं उसका मुंह बन्द करनेका यत्न करते हैं'

इतना ही नहीं बल्कि लेखक महोदयने स्वयं 'न्याय' में अपना लेख प्रकाशित किया है कि 'वस्तुतः आज आर्य समाजमें छिछोरापन अपनी चरम सीमातक पहुंच चुका है। विद्वानोंका अपमान होता है। गंभीर और विचारशील लोगोंकी अपेक्षा स्वार्थी, अवसरवादी, उद्दण्ड और स्वेच्छाचारी व्यक्ति पदोंपर अधिकार किये बैठे हैं।' इतना होते हुए भी महर्षि दयानंदके भक्त एवं सच्चे आर्य समाजी आर्य समाजसे पृथक हो जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है।

७– लेखक महोदयने लिखा है कि 'संसारमें हजारों मत व संप्रदायोंकी विद्यमानतामें नाथूलालजीने 'सप्त' शब्दके अर्थमें केवल चार्वाक, यहूदी, पारसी, बौद्ध ईसाई, मुसलमान और माध्व संप्रदायोंको ही क्यों लिया है, समझमें नहीं आता।' इसके समझमें न आनेको कारण भी केवल पक्षपात ही है। क्योंकि उस लेखमें ही स्पष्ट रूपसे लिखा है कि 'यद्यपि ये संप्रदायें सैकडों प्रकारकी हो गई हैं, परन्तु गंभीरतासे उनके आदि प्रवर्तककी अपेक्षासे देखा जावे तो इस समय संपूर्ण संसारमें मुख्य रूपसे केवल सात प्रकारके ही संप्रदाय हैं जिनके एकीकरण करनेवालेको वेदमें 'वाव' पदसे सम्बोधित किया है। इसीलिये इन सात सम्प्रदायोंका ऐतिहासिक विवरण भी दिया है' इतना विस्तार पूर्वक लिखा हुआ होनेपर भी लेखक महोदयकी दृष्टिमें इन सात संप्रदायोंको ही क्यों लिखा है। इसके समझमें न आनेका कारण उत्तर क्रमांक ३ में दिये हुए महर्षि दयानन्दके कथनानुसार एक मात्र पक्षपात ही हो सकता है।

८– इसके पश्चात लेखक महोदयने ईसाइयोंको भडकाते हुए लिखा है कि 'वानप्रस्थीजीने बाइबिलकी एक कथा भी उद्धृत की है। अतः हम आशा करते हैं कि कोई ईसाई विद्वान् बाइबिलपर किये गये बलात्कारका मुंह तोड उत्तर देगा' लेखक महोदयका यह कथन भी इस कथाके मूल लेखककी अनभिज्ञताका द्योतक है। क्योंकि– इस कथाके मूल लेखक ईसाई धर्मके एक उच्च कोटिके विद्वान् मिस्टर विलियम सीवर्स साहब अमेरिका निवासी हैं। जिन्होंने बाइबिलकी व्यापकता एवं महत्व बढानेके लिये बाइबिलकी इस भविष्यवाणीकी कथा अपनी लिखी हुई 'रिलीव दि सन्' नामक पुस्तकमें लिखी है।' और उनकी लिखी हुई इस कथाको मालूम करके, मैंने वेदकी व्यापकता एवं महत्व बतानेके हेतुसे उस कथाका आदि स्रोत वेदमें होना बताया है। इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि– जिस प्रकार लेखक महोदयने अपने संकुचित विचारोंके कारण अपनी ही धर्म-पुस्तक, वेदकी व्यापकता एवं भविष्यवाणीके महत्व पर कुठाराघात किया है। इस प्रकार ईसाई लोग संकुचित विचारके नहीं होते जो अपनी ही धर्म पुस्तककी व्यापकताके महत्वपर कुठाराघात करें।

९– इसी सिलसिलेमें लेखक महोदयने लिखा है 'हमारी सम्मतिमें तो प्रसंगके विरुद्ध किसी भी ग्रंथमें कोई भी अर्थ निकालना नितान्त अनुचित है।' यह कथन भी वेदकी व्यापताके महत्वको नष्ट करके उसको कूपमण्डूकवत्

● यहां लेखक महोदय महर्षिको तथा उनके सिद्धान्तोंको समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहे हैं, क्योंकि महर्षिको अद्वैतवादी बताना ही यह सिद्ध करता है कि लेखकने सत्यार्थप्रकाशको ध्यानसे नहीं पढा। महर्षिने अद्वैतवादका खण्डन कर त्रैतवादकी स्थापना की है—

सम्पादक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बनानेका द्योतक है। क्योंकि-इस बीसवीं सदीमें अनेक विद्वान् वेदोंमेंसे, तार विद्या, विमान विद्या, वनस्पति विद्या आदि अनेक प्रकारके आविष्कार निकाल रहे हैं और वेद सब सत्यविद्याओंका पुस्तक होना सिद्ध करते हुए वेदकी व्यापकताके महत्वको बढा रहे हैं हाल ही में आर्यमुनिजीने वेदमेंसे कई प्रकारकी विद्यायें खोज कर निकाली हैं। इसी प्रकार पं. सुन्दरलालजी इलाहाबादने 'गीता और कुरान' नामकी समन्वयकारी पुस्तक लिखी है। जिसपर उनको ५००० पांच हजार रूपमें पारितोषकके मिले है। परंतु लेखक महोदय इतने उच्चकोटिके विद्वान् होकर इस खोजके विरुद्ध वेदकी व्यापकताके महत्वको मिटाकर उसे कूपमंडूकवत् बनानेकी सम्मति दे रहे हैं। जो वेदकी व्यापकताके महत्व पर अत्यंत कुठाराघात करना है।

१०- लेखक महोदयने वेद मंत्रोंको निजी धरोहर समझ कर लिखा है कि- 'नाथूलालजी लिखते हैं कि महात्मा 'बाब' ने उपरोक्त वेद मंत्रके अनुसार सम्पूर्ण धार्मिक सम्प्रदायोंको परस्पर विरोधी और विज्ञानके विरुद्ध देखा, हमारा निवेदन है कि 'वेदमंत्रके अनुसार' शब्दोंका प्रयोग ही आपत्तिजनक है। क्योंकि हम यह निश्चित कर सकते है कि बहाई मत प्रवर्तक अलीमोहम्मदने तो क्या उनकी सात पीढीने भी वेदोंके दर्शन नहीं किये होंगे फिर यह लिखना दंभके अतिरिक्त क्या होसकता है।' यह कथन भी 'वेद' शब्दके अर्थकी अनभिज्ञताका द्योतक है। क्योंकि 'वेद' शब्दकी उत्पत्ति 'विद्' धातुसे होती है जिसका अर्थ ज्ञान है इस ज्ञानके उपार्जन करनेवाले ज्ञानीकी महत्वताके सम्बन्धमें यजुर्वेद ३१।१२ व कठोपनिषद् ३।२।९ में बताया है कि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मरूप होता है और उसकी वाणी वेद रूप होती है। इसका तात्पर्य यह है कि शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मवेत्ताके हृदयमें ईश्वरीय वाणी प्रकट होती है इस लिये वह वाणी वेद रूप होती है। इसी लिये निश्चलदासजीने अपने विचार सागर नामक ग्रंथमें लिखा है कि—

ब्रह्मरूप अतिब्रह्मविद् जाकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत भेद-तम छेद॥

अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मरूप होता है और उसकी वाणी वेद रूप होती है। वह वाणी हिन्दी, फारसी, अंग्रेजी आदि किसी भी भाषा अथवा संस्कृतमें हो अज्ञान रूपी तमको समूल नष्ट करनेवाली होती हैं।

इसीप्रकार कबीर साहब कुछ नहीं पढे थे, तब भी उनके पास बडे-बडे पंडित वेद मंत्रोंकी संगति लगानेके लिये जाते थे

द्वासुपर्णा मंत्रके संबंधमें पूछने पर उन्होंने
उत्तर दिया कि 'एक तरुवर पै बैठे दो पक्षी।
एक भोगे एक रहे अनिच्छी॥'

इन प्रमाणोंसे स्पष्टता सिद्ध है कि लेखक महोदय ब्रह्मज्ञानीके महत्वसे नितान्त अनभिज्ञ हैं।

११- अन्तमें लेखक महोदयने अनेक अप शब्दोंके साथ अपनी सम्मति देते हुए लिखा है कि 'यदि वह बहाई मतसे सचमुच इतना प्रभावित हुआ है तो उसे उचित है कि वह अपने परंपरागत हिन्दु धर्मको तिलांजली देकर खुले रूपमें मुसलिमान्तर्गत बहाई सम्प्रदायको स्वीकार कर ले।' लेखक महोदयकी यह सम्मति भी बहाई विश्वधर्मके सिद्धान्तकी अनभिज्ञताकी द्योतक है। क्योंकि बहाई विश्वधर्म एक वेदानुकूल धर्म है। इसकी पुष्टि वेद मूर्ति श्रीपाद दामोदरजी सातवलेकर साहब सम्पादक 'वैदिक धर्म' ने अपने वैदिक धर्म मास अक्तूबर सन १९५८ पृष्ठ ४४४ पर बहाई धर्म ग्रंथोंके समालोचनाके सिलसिलेमें 'बहाई-विश्व-धर्म' के सिद्धान्तोंकी वेदानुकूलता होनेकी पुष्टिमें स्पष्ट रूपसे लिखा है कि-

'बहाई-विश्व-नियमोंका अन्तःकरण पूर्वक अभ्यास करके इन्हें मानव जीवोंके सर्व क्षेत्रोंमें शीघ्राति शीघ्र उतारा जाय तो तुरन्त ही विश्व शान्ति स्थापित होगी। वैदिकधर्मी लोग इनका विरोध नहीं करेंगे। क्योंकि ये सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्तोंके साथ मिलते हैं। इसके अतिरिक्त लेखक महोदयकी सम्मतिके अनुसार बहाई विश्व-धर्म किसीके धर्मको परिवर्तन नहीं करता, बल्कि प्रत्येक धर्मके लोगोंको उनके ही धर्मके सच्चे अर्थ बताकर उनमें जाग्रति उत्पन्न करते हुए वेदोक्त धर्मियोंको सच्चा वेदोक्त धर्मी, व सनातन धर्मियोंको सच्चा सनातन धर्मी और मुसलमानोंको सच्चा मुसलमान तथा ईसाइयोंको सच्चा ईसाई बनाता है।

इससे स्पष्टतः सिद्ध है कि लेखक महोदय 'वेदोक्त बहाई विश्व-धर्म' के मन्तव्योंसे अनभिज्ञ हैं इसी हेतुसे उन्होंने वेदकी व्यापकताकी महत्वतापर अत्यन्त कुठाराघात किया है। जो पाठकोंके लिए विचारणीय है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहायता दीजिये

सभी दानदाताओंसे नम्र निवेदन

स्वाध्याय-मण्डल, वैदिक संशोधन संस्थान ', पारडी, (जि. सूरत) के पास अमूल्य पुस्तकोंका प्रशंसनीय संग्रह है, जिनकी सुरक्षा करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है। उन पुस्तकोंकी सुरक्षाके लिए एक बृहद् पुस्तकालय बनवानेकी योजना है। जिसका नाम '**महर्षि पुस्तकालय**' होगा। इस योजनामें कमसे कम ४०,००० व्यय होनेकी संभावना है। हम इस बातके लिए प्रयत्नशील हैं कि इस उत्तम कार्यके लिए सरकारसे भी कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त हो और प्रसन्नताकी बात है कि गुजरात सरकारसे इसके लिए १०,००० की प्राप्ति भी हो चुकी है। पर हमारी आशा आप जैसे दानदाताओंकी सहायतासे ही पूरी हो सकती है। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि आप यथाशक्ति इस कार्यमें हमारी सहायता करें। यदि प्रत्येक व्यक्ति कमसे कम भी दान, दे तो हमें बहुत सहायता मिल सकती है। दानी महानुभाव अपनी सहायता मनिआर्डर अथवा चेक द्वारा '**अध्यक्ष, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. सूरत (गुजरात)**' के पते पर भेज सकते हैं। पर पत्रमें अथवा मनिआर्डरके कूपन पर '**पुस्तकालयकी सहायताके लिए**' अवश्य लिखें। जो भी दान देंगे उनके नाम हम अपनी मासिक पत्रिकाओंमें छापेंगे।

मन्त्री—

स्वाध्याय मण्डल, पारडी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Statement about ownership of VAIDIC DHARMA (Hindi)
(Rule 8 From IV), Newspapers (Central) Rule, 1956

1. *Place of Publication*	:	SWADHYAYA MANDAL P. O. 'Swadhyaya Mandal (Pardi)' Pardi [Dist : Surat]
2. *Periodicity of Publication*	:	MONTHLY 5 th of each Calendar Month
3. *Printer's Name*	:	VASANT SHRIPAD SATWALEKAR Swadhyaya Mandal, Bharat Mudranalaya,
Nationality	:	INDIAN
Address	:	P. O. 'Swadhyaya Mandal (Pardi)' Pardi [Dist : Surat]
4 *Publisher's Name*	:	VASANT SHRIPAD SATWALEKAR Secretary, Swadhyaya Mandal
Nationality	:	INDIAN
Address	:	P O. 'Swadhyaya Mandal (Pardi)' Pardi [Dist : Surat]
5. *Editor's Name*	:	Pt. SHRIPAD DAMODAR SATWALEKAR
Nationality	:	INDIAN
Address	:	P. O. 'Swadhyaya Mandal (Pardi) Pardi [Dist : Surat]
6. *Name & Address of individuals who own the paper*	:	Pt. SHRIPAD DAMODAR SATWALEKAR President- Swadhyaya Mandal.

I, Vasant Shripad Satwalekar, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

28 th February, 1963

Vasant S. Satwalekar
Signature of the Publisher

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोन।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu